सपूत

और

अन्य कहानियां

(कहानी संग्रह)

सम्पादिका

शकुन्तला अग्रवाल साहित्य रत्न प्रभाकर

प्रिंसिपल महिला ओरियण्टल कालिज, लुधियाना।

राजहंस प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक—
राजहंस प्रकाशन,
दिल्ली

प्रथम संस्करण
मूल्य दो रुपये

मुद्रक—
राजहंस प्रेस,
दिल्ली।

भूमिका

कहानी-कला का सम्बन्ध नर की अपेक्षा नारी से अधिक है। इसके अनेक कारण हैं। कहानी का जन्म ही नारी की गोद में हुआ है; नानी-दादी की कहानियाँ इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। बचपन में बच्चे मनोरञ्जन के लिए बड़ी-बूढ़ियों के पास कहानी सुनने को दौड़ते हैं। ,आजकल की कहानी का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। दफ्तर से घर को आए हुए पुरुष को मनोरंजन चाहिए। बाहर की अपेक्षा घर में—स्त्री के साम्राज्य में—कहानी पढ़ सुन कर वह अधिक आनन्द अनुभव कर सकता है। आधुनिक कहानी का विषय है मनुष्य जीवन की अनुभूतियों का चित्रण। परन्तु नारी के हृदय को 'देवो न जानाति कुतो मनुष्य;' बेचारा पुरुष क्या समझेगा ? उसे तो नारी ही समझ सकती है। आधुनिक कहानी लेखिकाओं❀ने प्रमाणित कर दिया है कि वे कहानी लिखने में पुरुषों की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं हैं। भावी सन्तान को बनाने वाली माता है, न कि पिता। माता इस बात का अधिक विचार कर सकती है कि उसे अपने बच्चों को किस प्रकार की कहानी देनी चाहिए। अतः कहानी के लिखने और कहानी के चुनाव में नारी का अधिकार अधिक है, वह इस कला में अधिक कुशल है, ऐसी ही नाना भावनाओं को लेकर मैंने यह संग्रह अपने पाठकों के सम्मुख रखने का साहस किया है।

स्थान के अभाव से हिन्दी के सभी कहानी लेखकों की एक-एक कहानी भी यहाँ देना नितान्त असंभव है। हिन्दी का कहानी

❀ इसका वर्णन आपको इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगा।

साहित्य अब इतना विशाल है कि सभी कहानीकारों की एक-एक कहानी संकलन करने से भी वह कई हज़ार पृष्ठ का एक विशाल ग्रन्थ बन जाए। अतः मैंने केवल प्रतिनिधि कहानियां चुनी हैं। प्रयत्न यह किया गया है कि पाठक को इस में स्वर्गीय तथा वर्तमान (लब्ध प्रतिष्ठ तथा उदीयमान) पुरुष तथा स्त्री, सब की उत्तमोत्तम कहानियों का रस मिल सके। यही नहीं, विषयों की विभिन्नता (सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, दार्शनिक इत्यादि), शैलियों की विभिन्नता (वर्णनात्मक, आत्म-चरित्रात्मक तथा कथोपकथनात्मक इत्यादि), रसों की विभिन्नता आदि का भी पूरा ध्यान रखा गया है जिससे कि पाठक को 'गागर में सागर' मिल जाए और वह हिन्दी कहानी-कला के सौंदर्य को स्वयं अनुभव कर सके। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि इसमें एक वाक्य तो क्या, एक शब्द भी अश्लील न आने पाए। पाठकों के हृदय तनिक-मात्र भी कलुषित न होने पायें, परन्तु पहले की अपेक्षा उनके सात्विक विचार अधिक विकसित हो सकें, ऐसा मैंने आदि से अन्त तक प्रयत्न किया है। जिन कलाकारों की रचना का इस संग्रह में समावेश नहीं हो सका है, उनसे मैं क्षमा चाहती हूँ, क्योंकि उनके प्रति भी मेरी वैसी ही श्रद्धा है, और जिन कलाकारों की रचना का इसमें समावेश किया गया है, उनका मैं हृदय से धन्यवाद करती हूँ और अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

लुध्याना— विनीता—

२२ जुलाई १६४६ शकुन्तला अग्रवाल

कहानी की परिभाषा

कहानी की परिभाषा कठिन भी है, और सरल भी। मनुष्य स्वभाव से ही अपनी कहना, और दूसरे की सुनना चाहता है। बस यही संक्षेप में कहानी की परिभाषा है। मनुष्य-जीवन के आरम्भ के साथ ही कहानी का भी प्रादुर्भाव हुआ। सभ्यता के विकास के साथ २ कहानी के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण बदलता गया। प्राचीन काल में कहानियों की शैली और उनका ढंग और था, आजकल और है। प्राचीन काल में आध्यात्मिक, पौराणिक अथवा जीव जन्तुओं की कहानियाँ होती थीं, उनका मुख्य उद्देश्य औपदेशिक था। उनमें मनुष्य जीवन की अनुभूतियों का चित्रण नहीं होता था। आजकल की कहानी का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। उसमें जीवन के किसी तथ्य का विश्लेषण अथवा उसकी किसी अनुभूति का चित्रण करना आवश्यक है। तो आजकल की कहानी की परिभाषा हुई, मनुष्य-जीवन की अनन्त अनुभूतियों में से किसी एक को सरल सुन्दर भाषा में मनोरंजक रीति से चित्रण करना।

कहानी का साहित्य में स्थान

किसी भी देश के साहित्य में कहानी का स्थान सबसे बढ़ कर है। यदि यह कह दिया जाय कि साहित्य रूपी उद्यान में तीन-चौथाई स्थान कहानी के बेल-बूटों ने घेर रखा है, तो उसमें अत्युक्ति न होगी। साहित्य के आरम्भ से पहले कहानी विद्यमान थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। संसार के सबसे प्राचीन साहित्य ऋग्वेद में कहानी वास्तविक रूप में नहीं, तो उसके

अनेकांश दृष्टान्तों आदि के रूप में विद्यमान थे,—यह अनेक विद्वान् मानते हैं। तदनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों तथा धर्म ग्रन्थों और स्मृतियों में तो कहानियों की भरमार रही। बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य में जातकों और धार्मिक आख्यानों ने कहानी में खूब सिक्का जमाया। रामायण और महाभारत आदि महाकाव्य, तथा संस्कृत के प्रसिद्ध काव्यों, महाकाव्यों और नाटकों का आधार कहानी ही तो है। संस्कृत-साहित्य में आख्यायिकाओं और कथा-ग्रन्थों की कमी नहीं है। कादम्बरी, पंचतन्त्र, कथा सरित् सागर, बृहत् कथा मंजरी आदि अनेक ग्रन्थों ने न केवल भारत में ही, बल्कि उससे बाहर भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

हिन्दी साहित्य में भी आदि काल से लेकर अब तक कहानी ने बराबर अपना प्रभाव जमा रखा है। वीरगाथा काल में वीर गाथाओं पृथ्वीराज रासो आदि) का, भक्ति काल में काव्य ग्रन्थों (तुलसीदास के रामचरितमानस और सूरदास के सूर-सागर आदि) का और रीति-काल में भूषण, केशव और पद्माकर आदि महाकवियों के अनेक ग्रन्थों का आधार कहानी ही रही। कहानी के पर्य्यायवाची शब्द हैं कथा और कथानक। बिना कथा और कथानक के कोई लेखक साहित्य के किस अंग का निर्माण कर सकता है? कथानक की रोचकता पर ही तो किसी ग्रन्थ की सफलता निर्भर है, चाहे वह काव्य-ग्रन्थ हो या नाटक अथवा कुछ और। हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में तो चारों ओर गद्य का बोलबाला है। गद्य में भी उपन्यासों और कहानियों की भरमार अधिक है। पुस्तकें तो दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक संख्या में निकलती ही हैं, मासिक और साप्ताहिक पत्रिकाओं में भी अधिक स्थान कहानियों को ही मिलता है। आज का युग वास्तव में उपन्यासों और कहानियों का

युग है, उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों का अधिक ।

कहानी की सर्वप्रियता के कारण

कहानी की सर्वप्रियता के अनेक कारण हैं ।

१. यह सरल और मनोरंजक रीति से कही जाती है। इसमें मस्तिष्क पर कोई बोझ नहीं पड़ता । धर्म के शुष्क और क्लिष्ट सिद्धान्त भी आसानी से समझ में तभी आते हैं जबकि उनकी व्याख्या कहानियों और दृष्टान्तों से कर दी जावे ।

२. कहानी का मनुष्य-जीवन के साथ निकटतम का सम्बन्ध है । कहानी में किसी के सुख-दुःख, हर्ष-शोक, हानि-लाभ, जय-पराजय का रोचक वर्णन होता है, उस वर्णन में श्रोता अपनी अनुभूतियों के साथ सादृश्य पाता है, अतः उसके श्रवण में विशेष आनन्द लेता है ।

३. बचपन से ही हमें दादी-नानी की कहानियों के सुनने का अभ्यास होता है ।

४. जब हमारा मन काम से ऊब जाता है, तब यदि कोई साहित्य हमारा मनोरंजन कर सकता है, तो वह कहानी साहित्य ही है । आजकल की कहानी आध-पाव घण्टे में समाप्त हो जाती है । आजकल के संघर्षमय युग में, जबकि मनुष्य के पास अधिक समय नहीं है, थोड़े समय में समाप्त हो जाने वाली आजकल की कहानी ने (जिसे हम Short story भी कहते हैं) पाठकों की सर्वप्रियता को प्राप्त कर लिया है, विशेषतया इसलिये कि इसके पढ़ने और सुनने से पाठक और श्रोता के हृदय का भार हल्का हो जाता है ।

कहानी का उद्गम स्थान

कहानी के उद्गम स्थान के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं । प्रत्येक देश के विद्वानों ने अपने अपने देश को

ही कहानी का उद्‌गम स्थान बताया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका विशेष कारण साहित्यिक संकीर्णता अथवा भाषा का भेद ही हो सकता है। जहां तक अलिखित कहानी का सम्बन्ध है, हम कह सकते हैं कि कहानी का उद्‌भव अन्धकार की गुफा में छिपा हुआ है, अतः प्रत्येक देश कहानी के उद्‌गम स्थान होने की डींग मार सकता है, परन्तु जहां तक साहित्य का सम्बन्ध है, यह निर्विवाद है कि संसार का सबसे प्राचीन साहित्य ऋग्वेद है और कि वैदिक काल से ही आध्यात्मिक कहानियों का आरम्भ हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

कहानी और उपन्यास में अन्तर

साधारणतया यह समझा जाता है कि कहानी छोटी होती है और उपन्यास लम्बा। देखने में हमें प्रायः मिलता भी ऐसा ही है। परन्तु कला की दृष्टि से 'आकार का भेद' कहानी और उपन्यास में आवश्यक चीज़ नहीं। कहानी लम्बी भी हो सकती है और उपन्यास छोटा भी। वास्तव में कथानक साहित्य के हम तीन भेद कर सकते हैं। १. लम्बे उपन्यास, २. छोटे उपन्यास और ३. कहानी।

लम्बे उपन्यासों का युग बीत गया। दो-दो चार-चार हज़ार पृष्ठों के उपन्यासों में अब पाठकों की रुचि नहीं रही। यही कारण है कि मुंशी प्रेमचन्द की रङ्गभूमि (२ भाग) की अपेक्षा उनके छोटे उपन्यास अधिक लोकप्रिय हैं, और छोटे उपन्यासों की अपेक्षा उनकी कहानियाँ। बड़े उपन्यास की अपेक्षा हमें छोटे उपन्यास में कला का अधिक परिपक्व रूप मिलता है और छोटे उपन्यास की अपेक्षा कहानी में। उपन्यास और कहानी के उद्देश्य और शैली में भारी अन्तर है। उपन्यास में हमें विभिन्न पात्रों और विभिन्न घटनाओं का विस्तार मिलता है, परन्तु कहानी

में लेखक समस्त जीवन के एक मुख्य-बिन्दु को ही अपने सामने रखता है, अर्थात् कहानी-कार नायक के समस्त जीवन-भवन को न चमका कर उसके एक उत्तम कोने को चमकाता है। उपन्यास यदि एक गुलदस्ता है तो कहानी एक फूल। कहानी में केवल एक घटना होती है, मुख्यतः एक पात्र होता है और एक विचार। उपन्यास के पात्र अधिक सजीव होते हैं, परन्तु कहानी की गति अधिक तीव्र होती है। उपन्यास में पात्रों को प्रधानता दी जाती है, कहानी में परिस्थिति को, विशेष अनुभूति के चित्रण को, उसकी कथन-शैली को।

क्या सफल उपन्यास-कार सफल कहानी-लेखक भी होता है ? इसका दो शब्दों में उत्तर देना हो, तो हम कह सकते हैं, "संभव है आवश्यक नहीं"। मुन्शी प्रेमचन्द उपन्यास-सम्राट् भी थे, और गल्प-सम्राट भी। परन्तु उपन्यास और कहानी के उद्देश्य और उसकी शैली में भारी अन्तर है। उपन्यास में वर्णन की जो विविधता पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए अत्यन्त आवश्यक है, वही कहानी में एक दोष माना जाता है। अच्छी कहानी लिखना मानों रेल की पटरी पर दौड़ना है। मार्ग बहुत तंग और फिसलने का भय। उपन्यास लेखक के पास तो फिरने फिराने और घूमने घुमाने के लिये अनेक पगडंडियां होती है। आजकल के छोटे उपन्यासों के लेखक कहानी-लेखकों के अधिक समीप होते जाते हैं।

कहानियों के भेद

विषय और उद्देश्य के भेद से कहानियों के अनेक भेद किए गए हैं।

१. प्राचीन काल में, विशेषतया वैदिक काल में, कहानियां

धार्मिक होती थीं, उनका उद्देश्य आत्मा को उन्नत करना और सात्विक भावों को जागृत करना था। वे आध्यात्मिक कहानियां कहलाती हैं।

२. तदनन्तर पंचतन्त्र और हितोपदेश आदि कहानियों का एक और भेद मिलता है जिन्हें हम जीव-जन्तुओं की कहानियां कहते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य औपदेशिक था। सरल कहानियों के द्वारा राजनीति की गूढ़ चाले इनमें बड़ी विचित्र रीति से समझाई गई हैं।

३. साहस-प्रधान कहानियां—कथासरित् सागर और बृहत् कथा मंजरी (दोनों सस्कृत के प्रसिद्ध कहानी ग्रन्थ) आदि में हमें साहस-प्रधान कहानियां देखने को मिलती हैं।

४. काल्पनिक अथवा जादू और परी देशों की कहानियां—यह कल्पना-प्रधान होती हैं, और स्वाभाविकता से बड़ा दूर। प्राचीन काल में यह प्रणाली बहुत प्रचलित थी। शुक सप्तति और बेताल पचीसी आदि कहानियां इसी श्रेणी की कही जा सकती हैं। अलिफ लैला, चहार दरवेश, तिलिस्म होशरुबा आदि कहानियां इसके अन्य उदाहरण हैं।

५. ऐय्यारी और ठगी (जासूसी) की कहानियां—इनका भी बहुत समय तक अच्छा प्रचार रहा। 'भूतनाथ' और 'चन्द्रकांता सन्तति' आदि इसके उदाहरण हैं। इनसे जनता का खूब मनोरंजन हुआ। हिन्दी का प्रचार भी हुआ, क्योंकि अनेक लोगों ने इसे पढ़ने के लिये हिन्दी सीखी, परन्तु इन कहानियों में सौंदर्य और कला का अभाव है।

६. प्रेम गाथाएं—(Love Stories)—इनका भी प्रचार पहले बहुत होता था। इनका 'कथा वस्तु' केवल प्रेम पर आश्रित होता था। इनके संयोगान्त और वियोगान्त दो भेद होते

थे। अन्त में नायक और नायिका का संयोग हो गया तो उसे संयोगान्त कहते थे, और जो उनका वियोग ही बना रहा, तो वियोगान्त।

५. सुखान्त और दुःखान्त—आजकल की कहानी का विषय केवल 'प्रेम' नहीं रहा। आधुनिक कहानी-लेखक के सामने तो समाज की तथा इधर-उधर की अनेक समस्याएं विद्यमान हैं। जिस कहानी में कहानी लेखक के उद्देश्य की पूर्ति हो जाए, उसे सुखान्त कहते हैं, और जिसमें उद्देश्य की पूर्ति न हो सके, उसे दुःखान्त कहते हैं। यह आवश्यक नहीं कि दुःखान्त कहानी के अन्त में मृत्यु अथवा कोई और दुःखप्रद घटना हो। इसका अभिप्राय यही है कि अन्त में लेखक को 'फल' की प्राप्ति नहीं हुई।

[इसके अतिरिक्त आजकल शब्द चित्र (sketch) और अन्योक्ति प्रधान (Allegorical) कहानियां भी बड़ी प्रचलित हो रही हैं, परन्तु इन्हें कहानियों से भिन्न रचना का अलग ही प्रकार समझना चाहिए। शब्द-चित्र में किसी पात्र का चरित्र-चित्रण प्रधान होता है और उनमें हास्यरस की अधिकता रहती है। अन्योक्ति प्रधान कहानियां निबन्धात्मक होती हैं, उन्हें गद्य-काव्य भी कह सकते हैं।]

आवश्यक सूचना—मनुष्य-जीवन की अनुभूतियां अनन्त हैं। प्रत्येक अनुभूति को कहानी का विषय बनाया जा सकता है। अतः कहानियों के विषय भी अनन्त हैं। उनको सीमा के अंदर नहीं बांधा जा सकता।

अच्छी कहानी के गुण

१. अच्छी कहानी में कोई वाक्य ही नहीं, बल्कि कोई शब्द भी निरर्थक न होना चाहिए।

२. उनका शीर्षक ही बड़ा आकर्षक होना चाहिए, जिसको पढ़कर कि कहानी को पढ़ने की स्वयं उत्सुकता पैदा हो। शीर्षक देने के अनेक ढंग हैं, जैसे (क) एक शब्द के द्वारा, जैसे इस संग्रह में 'सपूत', 'किनारा' (ख) अनेक शब्दों के द्वारा, जैसे 'बड़े घर की बेटी', 'मां की आत्मा', 'दस के सौ', 'मैं अपराधी क्यों ?', (ग) पूरे वाक्य के द्वारा, जैसे 'चट्टान से पूछ लो।' अन्तिम शैली पश्चिमीय साहित्य की देन है, पहले-पहल अंग्रेजी साहित्यकारों ने ही पूरे वाक्य के शीर्षक देने आरम्भ किये थे।

३. कहानी के पहले वाक्य में ही पाठक के चित्त को आकृष्ट कर लेने की शक्ति होनी चाहिए।

४. कहानी में कहीं भी शिथिलता नहीं आनी चाहिए।

५. कहानी में चरम सीमा पदाकोटि (climax) का होना आवश्यक है।

६. कथानक मनोरंजक होना चाहिए। उसका हमारे नित्य के जीवन से निकट का सम्बन्ध होना चाहिए। उत्कृष्ट कहानी वह है, 'जिसमें एक स्थल पर, एक समय में, एक घटना का वर्णन हो'। अर्थात् कथानक में स्थल का सामंजस्य, समय का सामंजस्य और कार्य का सामंजस्य यह तीनों गुण होने चाहिएं। यदि कहानी का स्थल बहुत विस्तृत है, अथवा उसका समय कई वर्ष लम्बा है, अथवा उसमें कई घटनाएं आ जाती हैं, तो कहानी में शिथिलता और अरोचकता का आ जाना स्वाभाविक है। उतने ही अंशों में वह कहानी नीची कोटि की समझी जावेगी।

७. आरम्भ से लेकर अन्त तक पाठक की उत्सुकता बनी रहनी चाहिए। 'आगे क्या होगा ?' यह जिज्ञासा पाठक के हृदय में बराबर बनी रहनी चाहिए। पाठक कहानी के अन्त का

स्वयं अनुमान न कर सके, अन्यथा कहानी में अरोचकता आ जाएगी और वह उसे बीच में ही छोड़ देगा। संक्षेप में कहानी की सफलता इस बात पर निर्भर है कि उसको पढ़ते समय हम उसमें खो गए कि नहीं।

८. अन्त—कहानी के अन्त में भी कुछ विचित्रता होनी चाहिए। आधुनिक कहानी-लेखकों की प्रवृत्ति एक समस्या खड़ी कर देनी की हो गई है जिससे कि पाठक उस समस्या को सुलझाने में स्वयं उलझ जाए, और कहानी की रोचकता का अनुभव करे।

६. शैली—कहानी की सफलता अधिकतर लेखक की शैली—उसके कहने के ढंग—पर भी निर्भर है। कहानी के आरम्भ, प्रसार और अन्त—तीनों में सामंजस्य होना आवश्यक है। लेखक की भाषा स्वाभाविक और पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। उसका चरित्र-चित्रण प्रभावोत्पादक होना चाहिए। लेखक का वाक्य-विन्यास और उसकी उक्तियां आदि कहानी में विशेष चमत्कार लाती हैं। कहानी कहने के अनेक ढंग हैं। प्रत्येक लेखक की अपनी जुदा २ शैली होती है, जोकि परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। कहानी कहने के मुख्य ढंग यह हैं:—

१. आत्म-चरित्र प्रणाली—इसका लेखक मानों आप बीती सुना रहा हो—

२. ऐतिहासिक अथवा वर्णनात्मक प्रणाली—इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक मानो तीसरा व्यक्ति बनकर इतिहास लिख रहा हो—

३. डायरी प्रणाली—इसमें डायरी के पन्नों के द्वारा सारी घटना का वर्णन किया जाता है।

४. पत्रात्मक प्रणाली—इसमें कुछ पत्रों द्वारा सारी कथा को उपस्थित किया जाता है।

५. कथोपकथन प्रणाली—इसमें पात्रों के वार्तालाप के द्वारा ही कहानी को बढ़ाया जाता है और पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जाता है। यह प्रणाली रेडियो में विशेष उपयोगी है। इससे कहानी में यथार्थता और सजीवता अधिक आ जाती है। इस प्रणाली की कहानियों और नाटकों में यह भेद है कि इन कहानियों में वार्तालाप तो होता है, परन्तु दृश्य चित्रण और अभिनय नहीं। अभिनय और दृश्य चित्रण नाटक के मुख्य अंग हैं।

[सूचना—आत्म-चरित्र और ऐतिहासिक प्रणाली की कहानियाँ देखने से अधिक मिलती हैं।]

कहानी का उद्देश्य

कहानी का उद्देश्य यथार्थवाद (Realism) होना चाहिए, अथवा आदर्शवाद (Idealism), इस विषय पर कहानीकारों में मतभेद है। प्राचीन काल में कहानी उपदेशात्मक होती थी, परन्तु आजकल विज्ञान का युग है। आजकल की कहानी का उद्देश्य जीवन की किसी अनुभूति का चित्रण होता है। पश्चिम के कहानीकार यथार्थवाद के अनुयायी हैं। वे जीवन को जैसा देखते हैं, वैसे ही चित्रण करते हैं। उनकी देखा-देखी वर्तमान युग के आरम्भिक-काल में भारतीय कलाकारों ने भी यथार्थवाद को अपनाया। संसार में पाप अधिक हैं, पुण्य कम। यथार्थवाद में नग्नता है, अश्लीलता है। इसमें चरित्र के उन्नत करने की भावना नहीं। हमारे कलाकारों ने पाप का मनोरंजक दृश्य खींच कर उसके दुष्परिणाम दिखा कर यह आशा रखी कि पाठक पाप से दूर भागेंगे। परन्तु हुआ उसके विपरीत। पाप

का चित्र इतना मनोरञ्जक और प्रभावशाली होता था कि उस का प्रभाव युवकों के कोमल हृदयों पर अधिक पड़ता था, अतः अनेक युवक और युवतियाँ पतन के गढ़े में गिर गईं। उपन्यासों और कहानियों का पढ़ना युवकों के लिये हानिकारक समझा जाने लगा। समय पलटा। भावना जागी कि "केवल मनोरञ्जन न हमारा कर्म होना चाहिए। उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।" मुंशी प्रेमचन्द क्षेत्र में आए। और उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का आश्रय लेकर कहानी के नवीन-युग को प्रवर्तित किया। इसका आशय यह है कि संसार के अन्दर बुरे व्यक्ति हैं, तो अच्छे भी हैं। बुरे व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण करके हम अपनी भावनाओं और मनोवृत्तियों को क्यों अपवित्र और कलुषित करें? क्यों न संसार के अच्छे व्यक्तियों के चित्रण से हम अपनी सात्विक भावनाओं और मनोवृत्तियों को जागृत करें? हिन्दी का आधुनिक कहानी-लेखक यह स्वीकार करता है कि कहानी का मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन है। कहानी के अन्त में शिक्षा अथवा उपदेश नहीं होना चाहिए। परन्तु कहानी का कथानक और उसके कहने का ढंग ऐसा होना चाहिए कि पाठक का मनोरञ्जन भी हो जावे और उसके अन्दर नये उत्साह, नये जीवन, और नई उमंगों का भी संचार हो जाए। कहानीकार के सामने एक उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में न कह कर केवल संकेत मात्र से ही सुझा देना उसकी कला का विशिष्ट गुण है।

आधुनिक कहानी-युग

प्राचीन कहानी और आधुनिक कहानी में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्राचीन कहानियाँ घटना-प्रधान हैं, आधुनिक भाव-प्रधान। प्राचीन कहानियों का मुख्य उद्देश्य 'उपदेश'

होता था, आधुनिक कहानियों का मुख्य उद्देश्य 'मनोरञ्जन।' आधुनिक कहानी का विधान (Technique) पश्चिम की देन है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्राचीन कहानी से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं। कहानी के विकास में प्राचीन कहानी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक कहानी का रम्य प्रासाद प्राचीन कहानी की नींव पर खड़ा है। आधुनिक कहानी-युग ईसा की बीसवीं शताब्दी के साथ आरम्भ हुआ। उस समय पश्चिमीय कहानी-कला उन्नति के शिखर पर आरूढ़ थी। गोर्की, टाल्स्टाय, तुर्गनेव, मोपासाँ और अनातोले फ्रांस आदि प्रसिद्ध कहानीकार अपना स्थान विश्व-साहित्य में बना चुके थे। अँग्रेजी के द्वारा उनकी गहरी छाप पहले बंगला साहित्य पर पड़ी और फिर हिन्दी साहित्य पर। पहले-पहल 'सरस्वती' में बंगाली कहानियों के अनुवाद और स्वतन्त्र अनुवाद प्रकाशित हुए। १९०२ में पं० किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी प्रकाशित हुई। आधुनिक मौलिक कहानियों का वास्तविक युग 'इन्दु' पत्रिका से आरम्भ होता है। १९११ में जयशंकरप्रसाद की मौलिक कहानी इसमें प्रकाशित हुई। तदुपरान्त कहानियों का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता गया। मुंशी प्रेमचन्द के आगमन से इसमें एक नया जीवन आ गया। अकेले प्रेमचन्द ने कई उपन्यासों के अतिरिक्त ४०० से अधिक कहानियाँ लिखीं। फिर तो अनेक कहानी-लेखक क्षेत्र में आगए। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री रायकृष्णदास, श्री मोहनलाल महतो, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री सुदर्शन, श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्री यशपाल, श्री 'यश' एम. एल. ए. श्री पहाड़ी,

आदि अनेक लेखक अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के द्वारा ख्याति-प्राप्त कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, श्री भारतीय, श्री वीटेश्वर सिंह, श्री भुवनेश्वरप्रसाद, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी. और देवेन्द्र सत्यार्थी आदि अनेक कलाकारों ने अपनी-अपनी देन से हिन्दी-साहित्य की वृद्धि की है। हास्य-रस के लेखकों में श्री अन्नपूर्णानन्द, श्री जयनाथ 'नलिन', श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, श्री हरिशंकर शर्मा, श्रीराधाकृष्ण, श्री रघुकुल तिलक, और श्री अमृतलाल नागर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लेखिकाओं में सुश्री स्वर्गीय सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, शिवरानी प्रेमचन्द, सत्यवती मलिक, कमला त्रिवेणीशंकर, कमलादेवी चौधरी, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, होमवती, तेजरानी; दीक्षित, सुशीला आगा, चन्द्रवती ऋषभसेन जैन, सुमित्राकुमारी सिन्हा के नाम प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में श्री राजेन्द्र शर्मा, श्री तुलसी भाटिया, आदि अनेक उदीयमान कहानी लेखकों की अच्छी-अच्छी कहानियाँ निकलती रहती हैं। हिन्दी का कहानी साहित्य उत्तरोत्तर उन्नति पर है। आज हिन्दी-साहित्य को यह गौरव प्राप्त है कि उसके गण्य-मान्य कहानी लेखकों ने ऐसी कहानियां भी लिखने में सफलता प्राप्त की है जो विश्व-साहित्य के दरबार में निर्विवाद बहुत ऊंचे आसन पर बिठाई जा सकती हैं।

लेखकों का परिचय

स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द

(सन् १८८०–१९३६)

स्व० मुंशी प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी युग के सर्वोत्कृष्ट उपन्यास लेखक और कहानी लेखक थे। आपको उपन्यास-सम्राट् की उपाधि दी जाती है, जिसके आप सर्वथा अधिकारी हैं। 'भारत की आत्मा' को जितना आपने समझा है और जितना सुन्दर चित्रण आपने किया है इतना और किसी कहानी लेखक ने नहीं। भारतीय सभ्यता का जितना उद्धार आपकी कहानियों द्वारा हुआ है, इतना और किसी की कहानियों द्वारा नहीं हुआ। आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को मानते थे। ग्राम्य जीवन आपको अधिक पसन्द था। किसानों मजदूरों, दलितों और दीन-दुःखियों की समस्याओं को आपने खूब निभाया है। आपकी प्रत्येक कहानी किसी-न-किसी विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई है। भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। चुस्त और मुहावरेदार उर्दू के शब्दों की प्रचुरता, सरल इतनी कि साधारण मनुष्य भी आसानी से समझ सकें। अतः आपकी भाषा राष्ट्र-भाषा का सुन्दर रूप उपस्थित करती है। आपके कथानक बहुत मनोरंजक होते हैं; स्वाभाविक और सुन्दर। चरित्र-चित्रण में आप अद्वितीय हैं। मनुष्य जीवन के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुन्दर सरल रीति में चित्रित करने के लिए आप सिद्ध-हस्त हैं। आपकी कहानियाँ सबसे अधिक लोकप्रिय हैं, अब तो आपकी कहानियों का अनुवाद विदेशी भाषाओं में भी हो चुका है।

आपका असली नाम धनपतराय था। आपका जन्म सन् १८८० में मढ़वा ग्राम, जिला बनारस में हुआ था। पहले आप उर्दू में लिखते थे। १६०५ में इन्होंने 'प्रेमचन्द' के नाम से हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। हिन्दी जगत् ने इनका खूब स्वागत किया और तब यह हिन्दी के ही हो गए।

कई एक प्रसिद्ध उपन्यासों के अतिरिक्त आपने ४०० से अधिक कहानियाँ लिखी है। इनके नीचे लिखे गल्प-संग्रह प्रसिद्ध हैं:—१—नवनिधि, २—प्रेमकुञ्ज, ३—प्रेम पूर्णिमा, ४—प्रेम-पञ्चमी, ५—प्रेम-द्वादशी, ६—प्रेम-पच्चीसी, ७—प्रेम-तीर्थ, ८—प्रेरणा, ६—मान सरोवर (७ भाग)।

'बड़े घर की बेटी' इनकी एक प्रसिद्ध शिक्षाप्रद कहानी है। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार ऊँचे कुल की एक अच्छी लड़की अपने परिवार को छिन्न-भिन्न होने से बचा लेती है। सम्मिलित परिवार की भारतीय प्रथा का गौरव इसमें स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

हिन्दी के दुर्भाग्य से सन् १६३६ में आप जलोदर रोग में ग्रस्त हो गए और आपने सदा के लिए अमरों का सहवास कर लिया। जब तक हिन्दी जीवित रहेगी, आपका नाम साहित्याकाश में बराबर चमकता रहेगा।

स्व० श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

(सन् १८६०–१६४५)

आपका जन्म सन् १८६० में अम्बाला छावनी (पंजाब) में हुआ था। बाल्यावस्था में ही आप कानपुर चले गये थे और अन्त तक वहीं रहे।

प्रेमचन्द जी का जीवन निर्धनता में व्यतीत हुआ, परन्तु यह धनाढ्य व्यक्ति थे और शुद्ध साहित्य-सेवी थे। हिन्दी के

अच्छे विद्वान् थे। बंगला, फ़ारसी और अंग्रेज़ी का भी इनको अच्छा ज्ञान था। इन्होंने कुछ नाटक और हास्यरस की चीज़ें भी लिखी हैं, परन्तु कहानी लिखने में तो यह बहुत कृतहस्त थे। मानो कहानी लिखना इनका बायें हाथ का काम था। चाय का प्याला पीते-पीते कहानी लिख डालते थे। 'मनोरंजन' पत्रिका के आप कई वर्ष तक सम्पादक रहे। इनकी प्रणाली 'कथनोपकथन' की है। वार्तालाप बड़ा चुस्त मानो नाटक हो। इनकी कहानियों में अनावश्यक विस्तार नहीं होता। शब्द नपे-तुले। इनकी कहानियों में प्रायः पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक कुरीतियों का वर्णन रहता है। इनकी कहानियां नीचे लिखे संग्रहों में संगृहीत हुई हैं:—

गल्प मन्दिर, मणिमाला, चित्रशाला (२ भाग) और कल्लोल।

'छोटा भाई' इनकी प्रसिद्ध कहानियों में से है, इसमें बताया गया है कि किस प्रकार बड़े भाई से सताया जाकर भी एक छोटा भाई उसके प्रति आदर्श व्यवहार करता है।

श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर

श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर का जन्म ज्ञानपुर ज़िला बनारस में हुआ है। आप बनारस के प्रसिद्ध एडवोकेट श्री त्रिवेणी शंकर की पत्नी हैं। आप दो सौ से अधिक कहानियां लिख चुकी हैं। आपकी कहानियों का एक संग्रह 'पुकार' नाम से प्रकाशित हो चुका है। मध्यमवर्ग की जनता के अभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आप बड़ी ही सुन्दरता से करती हैं। कथानक के लिए इनको कहीं दूर नहीं जाना पड़ता। आस-पास के वातावरण से ही इनको अपनी कहानी की सामग्री मिल जाती है। इनकी कहानियों में भारतीय नारी जीवन का बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण मिलता है। आपकी कहानियों

में सामयिक भावनाओं का अच्छा प्रतिबिम्ब पड़ा है। आप सब भान्ति से मौलिक हैं—भाषा में भी और भाव में भी। उज्ज्वल आदर्श-पूर्ण चरित्र की अवतारणा करना आपका लक्ष्य रहता है।

'नई मां' इनकी एक प्रसिद्ध कहानी है। इसमें हमें आदर्श विमाता के अपूर्व बलिदान का एक प्रभावशाली चित्र मिलता है।

श्री रायकृष्ण दास

(जन्म सन् १८६२)

श्री रायकृष्ण दास का जन्म सन् १८६२ में बनारस में हुआ। आपकी पहली कहानी १६१० में प्रकाशित हुई। आपकी भाषा संस्कृतमयी होती है और उस पर आपका पूरा अधिकार है। आपकी पहली ही कृति 'साधना' ने हिन्दी जगत् को मुग्ध कर दिया था। आपकी कहानियों के प्रकाशित संग्रहों के नाम हैं, १. अनाख्या, २. सुधांशु और ३. आंखों की थाह। इनके अतिरिक्त आपने 'प्रवाल' और 'भावुक' नाम की गद्य काव्य की पुस्तकें भी लिखी हैं। आप कवि हैं। और भावुक व्यक्ति हैं। इनकी कहानियों में दार्शनिक विचारों और भावो की प्रधानता रहती हैं। इनकी शैली जयशंकर प्रसाद जी से मिलती-जुलती है। आप हिन्दी के परम भक्त हैं। हिन्दी जगत् को भी अभी आप से बहुत आशा है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

(जन्म सन् १८६७)

श्री वृन्दावनलाल वर्मा झांसी के प्रसिद्ध एडवोकेट हैं, तो भी आप साहित्य-सेवा के लिए पर्याप्त समय निकाल लेते हैं। आप एक अनूठी मौलिक शैली के स्वामी हैं और एक प्रसिद्ध

उपन्यास* निकाल चुके हैं। कई एक आलोचकों का मत है कि प्रेमचन्द के बाद आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। आपकी कहानियां हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं। वीर बुन्देलों की ऐतिहासिक घटनाओं का विषय आपको अधिक रुचिकर है।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी

आल इण्डिया रेडियो के श्री देवेन्द्र सत्यार्थी को अब कौन नहीं जानता। आप सर्वतोमुखी प्रतिभा के स्वामी हैं। आपकी पहली रचना गिद्धा (लोकगीत) १९३६ में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद आप की लेखनी उत्तरोत्तर चमकती ही गई। अब तक आप नीचे लिखी रचनायें कर चुके हैं:—

लोक गीत—गिद्दा (१९३६), दीवा बले सारी रात (१९४१), मैं हूँ खाना बदोश (१९४१), गाये जा हिन्दुस्तान (१९४६), धरती गाती है (१९४८), धीरे बहो गंगा (१९४८), बेला फूले आधी रात (१९४८)।

कविता—धरती दियां वाजां (१९४१)

कहानियां—कुंगपोश (१९४१), नये देवता (१९४३), और बांसुरी बजती रही (१९४६)

निबन्ध—एक युग एक प्रतीक (१९४८)

आपकी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। इनमें प्रसाद गुण विशेष रूप से देखने को मिलता है। इनकी शैली अधिकतर वर्णनात्मक होती है। स्थान-स्थान पर इनकी भाषा में उर्दू और प्रान्तीय भाषाओं के शब्द देखने को मिलते हैं। इनकी कहानियों में मनोरंजकता

*जैसे कोतवाल की करामात, कुण्डली चक्र, प्रेम की भेंट, गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी।

काफी पाई जाती है। अधिकतर कथानक राजनीतिक घटनाओं से चुने जाते हैं।

राजा राधिकारमण प्रसादसिंह

राजा राधिकारमण प्रसादसिंह सूरजपुर (शाहाबाद) के निवासी हैं। आप पटना यूनिवर्सिटी के हिन्दी बोर्ड, उर्दू बोर्ड और बंगाली बोर्ड के सदस्य हैं। आपकी कहानियां बड़ी मनोरंजक होती हैं। इनकी भाषा उर्दू से प्रभावित होती है, अतः उसमें लोकोक्तियों और मुहावरों का अच्छा प्रयोग रहता है। उर्दू के शब्द भी आप काफी मात्रा में प्रयोग करते हैं। व्यर्थ विस्तार को आप पसन्द नहीं करते। आपके कथानकों में सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण अधिक रहता है। नवीन लेखकों में आपने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। 'पद का मद' आपकी प्रसिद्ध कहानी है। इसमें दिखाया गया है कि साधारण मनुष्य भी किसी पद को प्राप्त करके अभिमानी बन जाता है। जो उसकी तीव्र आलोचना करते हैं, उनको भी यदि कोई पद मिल जाये, तो वे अपने आप को भूलकर उससे भी अधिक अभिमानी हो जाते हैं। प्रभु की माया विचित्र है।

श्री राजेन्द्र शर्मा

उदीयमान कहानी लेखकों में श्री राजेन्द्र शर्मा ने अपनी साधना के द्वारा काफी ख्याति प्राप्त कर ली है। इनकी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इनकी कहानियों के विषय अधिकतर सामयिक समस्याओं से लिये जाते हैं. और इनके कथानक बड़े मनोरंजक होते हैं। इस प्रकार की एक समस्या 'किनारा' कहानी में ली गई है। पाठक की उत्सुकता आदि से अन्त तक बनी रहती है, यही इनकी कहानियों की विशेषता है। भाषा का प्रवाह स्तुत्य है।

श्री नलिन जी

श्री नलिन जी प्रसिद्ध कहानीकार और सफल-सम्पादक हैं। इनकी शैली आत्म-चरित्र प्रणाली है। इन्होंने कहानी के आरम्भ में अपना परिचय एक रूप से स्वयं दे दिया है। पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियों की अच्छी धूम है। फिल्मी कहानी इनकी बहुत सफल बन पड़ी है। इसका विषय और कहानियों से भिन्न है। हमारी हिन्दुस्तानी फिल्मों का कलात्मक स्तर क्यों ऊँचा नहीं होता? क्यों सस्ते मनोरंजन व नाच गानों से भरी हुई ही घटिया फिल्में बनकर आती हैं? हमारे अच्छे लेखक और कवि क्यों फ़िल्म-जगत् से भाग आते हैं? ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर आपको इस कहानी में मिलेगा। है न विषय आपका मन भाता?

विषय सूची

: १ :

छोटा भाई

(१)

लाला बद्रीदास एक लम्बी सांस लेकर अपने छोटे पुत्र जानकीदास से बोले—बेटा कुछ भी हो; परन्तु बुलाकीदास तुम्हारा बड़ा भाई है, इसका ध्यान सदैव रखना।

जानकीदास सिर झुकाकर बोले—यदि आप यह बात न भी कहें, तो भी मुझे इसका ध्यान सदा रहेगा; पर भाई साहब का जैसा स्वभाव है, उससे यह आशा नहीं कि वह शांति-पूर्वक कार्य करेंगे।

बद्रीदास तकिए के सहारे बैठकर बोले—बेटा, मेरी अवस्था इस समय सत्तर बरस के लगभग है। मैंने बीस बरस की अवस्था से पैसा कमाना शुरू कर दिया था। मैंने जिन कष्टों तथा दुःखों से धन एकत्र किया है, उन्हें भी जानता हूं। मैं तुम्हें अपने समस्त जीवन के अनुभव का निचोड़ बताए देता हूँ कि चाहे सारा संसार तुम्हारा शत्रु क्यों न हो जाय, तुम कभी सच्चा और सीधा मार्ग न छोड़ना और सदैव नम्र रहना। ऐसा करने से पहले चाहे तुम्हें कष्ट मिले; पर अन्त को अवश्य सुख मिलेगा।

जानकीदास—मैं प्राण-पण से आपका उपदेश पालन करने की चेष्टा करूँगा।

बद्रीदास—बड़ी प्रसन्नता की बात है। यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हारा विकट-से-विकट शत्रु भी अन्त को तुम्हारे आगे सिर झुकायेगा। मेरा तो अब चल-चलाव लग रहा है। मैं अब केवल चार छः दिन का मेहमान हूँ। इस रोग से मुक्त होने की कोई आशा नहीं। यह रोग मृत्यु का दूत है। मैंने अपने जीवन में सब प्रकार के दुःख-सुख देख लिये।

मेरे हृदय में किसी बात की इच्छा-अभिलाषा नहीं है। यदि कोई है, तो केवल यह कि मेरे पीछे तुम दोनों भाई सुख-शांति से रहो।

जानकी०—यदि ईश्वर की इच्छा और आपका आशीर्वाद है, तो ऐसा ही होगा।

बद्रीदास—होगा, निश्चय होगा, और वह केवल तुम्हारी ओर से। मुझे विश्वास है कि तुम इस बात की चेष्टा करोगे। इसलिए मैं तुम से इतनी बातें कह रहा हूँ। बुलाकीदास से मुझे आशा नहीं। इसी कारण मैंने उससे कुछ नहीं कहा; पर एक बार कहने की इच्छा अवश्य है, मानना-न-मानना उसका काम है।

जानकी०—मेरी भी इच्छा है कि एक बार आप उससे भी ये सब बातें कह दें।

बद्रीदास—कहूँगा, अवश्य कहूँगा, बिना कहे मैं सुख से न मर सकूँगा। यह मैं जानता हूँ कि वह मानेगा नहीं। उसने कभी किसी की नहीं मानी; पर कदाचित्—कदाचित् मरते हुए बूढ़े पिता का अन्तिम उपदेश उसे याद रहे, इसी आशा से कहूँगा।

जानकीदास नेत्रों में आँसू भरकर बोले—पिताजी, आप बार-बार मृत्यु का नाम न लें। जो कुछ ईश्वर की इच्छा है, वह तो होगी ही, फिर उसे रटने से क्या लाभ? आपका भी चित्त घबराता है, दूसरों को भी दुःख होता है।

बद्रीदास के होठों पर विषाद-युक्त मन्द मुसकान की रेखा दौड़ गई। उन्होंने कहा—मेरा चित्त मृत्यु से नहीं घबराता, मैं तो उस का स्वागत करने के लिए तैयार बैठा हूँ। इस प्रकार मरने में भी सुख है, आनन्द है—परन्तु यदि कोई इस बात का विश्वास दिला दे कि मेरे पीछे मेरे घर में सुख शांति का वास रहेगा।

जानकी०—जो होगा, होता रहेगा। आप उसके लिए इतने चिंतित क्यों होते हैं?

बद्रीदास—नहीं, चिन्ता कोई नहीं, केवल यह अभिलाषा है कि मेरा लगाया हुआ वृक्ष हरा भरा रहे, सूखने न पावे। बस, केवल इतनी ही अभिलाषा है, अन्तिम इच्छा है।

जानकी०—अब इच्छाओं-अभिलाषाओं को छोड़िये, और अपना चित्त ईश्वर की ओर लगाइए।

बद्रीदास— ईश्वर का ध्यान तो रहता ही है, वह तो रोम-रोम में बसा हुआ है—वह तो सबका मालिक ही है। इस बुलाकीदास ने··· हाँ, ईश्वर तो मालिक ही है। हे राम! हे कृष्ण!

जानकी०—आप भाई साहब की ओर से चिन्ता मत कीजिए। आपके सामने वह चाहे जो करें; पर मुझे विश्वास है कि आपके बाद वह मुझे अपने पुत्र के समान समझेंगे।

बद्रीदास—समझे तो अच्छा ही है। इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है? परन्तु बेटा, बुलाकी से मुझे इस बात की बहुत कम आशा है। मैं उसका स्वभाव अच्छी तरह जानता हूँ।

जानकीदास—जब मैं उनका आज्ञा-पालक रहूँगा, तो वह फिर कुछ न करेंगे।

बद्रीदास—ईश्वर ऐसा ही करें; परन्तु मुझे सन्तोष नहीं होता। देखो, किसी समय उससे कहूँगा। वैसा तो सैकड़ों बार कहा है, समझाया है; पर अन्तिम बार कहके देखना है।

(२)

लाला बद्रीदास बड़े रईस आदमी हैं। आपकी सम्पत्ति छः सात लाख की है। आपकी दो बड़ी-बड़ी मिलें हैं। एक आटा पीसने की, और दूसरी कपास ओटने की। लाला बद्रीदास अपनी जवानी में एक साधारण स्थिति के आदमी थे। अपने बाहु-बल और पराक्रम ही से उन्होंने इतना धन कमाया है।

[illegible]

सख्त बीमार हैं। चिकित्सकों तथा उनके इष्ट-मित्रों की धारणा है कि लाला बद्रीदास का अन्त समय उपस्थित है। इस रोग से मुक्त होना यदि असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। लाला बद्रीदास का भी यही विश्वास है, कि अब उनका अन्त समय आ गया। जब से उनका यह विश्वास हुआ, तब से यह बड़े उद्विग्न रहते हैं। उनकी उद्विग्नता मृत्यु-भय के कारण नहीं है। वह इस कारण से उद्विग्न नहीं हैं कि उनके हृदय में संसार-सुख लूटने की अभिलाषा शेष है। वह इसलिये भी दुःखी हैं कि उनके पीछे उनके परिवार की क्या दशा होगी; क्योंकि अपने परिवार के लिए वह इतना धन छोड़े जा रहे हैं, जो उसे उनके पीछे सुख-पूर्वक रख सकता है। उनके हृदय में यदि कोई चिन्ता है, तो केवल इस बात की कि उनके पीछे कोई बन्धन न रहने से उनका परिवार तितर-बितर न हो जाए। केवल यही एक चिन्ता उनकी मृत्यु-शय्या को उनके लिये कष्ट-दायक बनाये हुये है। इस आशंका को हृदय में रख कर वह मरना नहीं चाहते। यदि उनके हृदय से यह काँटा निकाल दिया जाय, तो वह सुख-पूर्वक मर सकते हैं।

जानकीदास से उपर्युक्त बात-चीत होने के दो दिन बाद बुलाकीदास दास को एकान्त में बुलाकर कहा—बेटा बुलाकी, मेरा तो अंत-समय उपस्थित है। रात को हूँ, तो दिन की आशा नहीं; दिन में हूँ, तो रात की आशा नहीं। पता नहीं, किस समय दम निकल जाय।

बुलाकी०—पिताजी, आप व्यर्थ ही ऐसी बातें करते हैं। डाक्टरों का कहना है कि आपकी दशा कुछ अधिक खराब नहीं है, आपका उठ खड़ा होना कुछ कठिन नहीं है।

यह बात बुलाकीदास ने केवल पिता को धैर्य बंधाने के लिए कही, अन्यथा वह अच्छी तरह जानते थे कि अब उनके पिता का अन्त-समय अत्यन्त निकट है।

बद्रीदास—ये सब कहने की बातें और लोकाचार हैं। मैं अपनी दशा भली भांति जानता हूँ—खैर। मैंने तुम्हें इसलिए बुलवाया है कि तुमसे कुछ बातें कहूँ।

बुलाकीदास ने कुछ उत्सुक होकर कहा—कहिए!

बद्रीदास—यदि आज तुम्हारी माता जीवित होती, तो मैं निश्चिन्त होकर सुख-पूर्वक मर सकता, पर भाग्य में तो इस अन्त-समय में शांति मिलना बदा नहीं था।

लाला बद्रीदास की आंखें अश्रु-पूर्ण हो आईं। उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास ली। तत्पश्चात् बोले—तुम्हारी माता जीवित रहती, तो मेरे बाद वह तुम दोनों भाइयों को एक सूत्र में बाँधे रखती; परन्तु अब कोई ऐसा आधार नहीं है। अतएव अब मुझे केवल तुम दोनों भाइयों की सज्जनता पर ही निर्भर होना पड़ रहा है।

बुलाकीदास अपने पिता का तात्पर्य समझ गए; पर बात का शीघ्र अन्त करने के लिए बोले तो आप चाहते क्या हैं?

बद्रीदास—केवल इतना कि मेरे पीछे तुम दोनों भाई मिल जुलकर रहो। सब काम वैसे ही रहें, जैसे अब हैं। घर में फूट न हो, सदैव सुख शांति का साम्राज्य बना रहे। जानकी यद्यपि तुमसे केवल तीन वर्ष छोटा है, पर वह तुमको मेरे बाद मेरे ही स्थान पर समझेगा। उसने मुझे विश्वास दिला दिया है। पर तुम्हारी ओर से अभी मैं निश्चिन्त नहीं हुआ। यदि तुम भी मेरे हृदय में यह बात जमा दो, तो मुझे पूर्ण शांति मिल जाय।

बुलाकीदास के मुख पर एक व्यंग-पूर्ण मुसकराहट दौड़ गई। उन्होंने कहा—आप इस चिंता में क्यों पड़े हैं? जो होना होगा, होगा। आप अपना चित्त शांत रखिये।

बद्रीदास—चेष्टा करता हूँ, पर नहीं होता, रात दिन यही ध्यान रहता है। तुम बच्चे नहीं हो, तुम्हारी अवस्था २८ वर्ष की है। तुम्हारे

पुत्र-पुत्रियाँ भी हैं। तुम एक पिता के हृदय को समझ सकते हो। इसीलिए तुमसे कहता हूँ, मेरे ये अन्तिम वाक्य, अन्तिम उपदेश, अन्तिम प्रार्थना—जो कुछ समझो—यहा है। मैं इसके सिवा और कुछ भी नहीं कहना चाहता।

बुलाकीदास सोचने लगे, यह बुड्ढा कितने मोह-जाल में फंसा हुआ है। आप तो मर रहा है, पर भविष्य पर भी अपना सिक्का जमाय रखना चाहता है। मरते हुए आदमी का भविष्य की क्या चिन्ता?

प्रकट में अपने पिता से कहा--पिताजी, साफ बात यह है कि मेरी और जानकी की निभना कठिन है; पर मैं आपको इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मैं निभाने की पूर्ण चेष्टा करूँगा और अपनी ओर से कोई ऐसी बात न करूँगा, जिससे आपस में फूट हो।

बद्रीदास ने पुत्र के इस कथन का तात्पर्य समझ लिया। यह जान गए कि बुलाकीदास अपने को किसी प्रकार बाध्य नहीं करना चाहते। वह नैराश्य की एक लंबी साँस लेकर बोले ईश्वर को जो मंजूर है, वही होगा। मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। अब तुम जानो, तुम्हारा काम। इस अन्त-समय में शांति मे मरना मेरे भाग्य में बदा नहीं है। खैर, कभी-कभी इस मरते हुए पिता के अन्तिम शब्द स्मरण कर लिया करना।

डूबते हुए को तिनके का सहारा भी मिलने से वह अपने बचने की आशा को हृदय से लगाए रहता है। मनुष्य की आशाएँ, चाहे वे मिथ्या हों चाहे सत्य, उसे दुःख झेलने के लिए प्रस्तुत करती हैं। आशा ही को हृदय से लगा कर मनुष्य बड़े-बड़े दुःखों को झेल जाता है।

बद्रीदास को जब चारों ओर निराशा दिखाई पड़ने लगी, तब उन्होंने केवल इस बात पर अपनी आशा को जीवित रक्खा कि मेरे पीछे मेरे अन्तिम शब्द याद करने ही से, सम्भव है इसके हृदय पर कुछ प्रभाव पड़े। मनुष्य के न रहने पर उसकी और उसकी बातों की स्मृति

का अधिक प्रभाव पड़ता है। आशा के इसी छाया-चित्र को बद्रीदास ने अपने सामने रखकर उससे अपने हृदय को, अपनी चंचल और अधीर आत्मा को, शांति देने की चेष्टा की। बद्रीदास ने पुत्र की बात के उत्तर में एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—बेटा, मुझे जो कुछ कहना था कह चुका। अब जो तुम्हारी इच्छा हो, और जो तुम उचित समझो, वह करना।

(३)

लाला बद्रीदास का स्वर्गवास हो गया। इधर उनका दम निकल रहा था और उधर बुलाकीदास कोठरी में ताला डलवा रहे थे। उनके इस कार्य पर लोगों को आश्चर्य हुआ; दुःख हुआ, पर किसी ने भी उनसे कुछ कहने का साहस नहीं किया। उनके अन्न से पलने वालों का तो इतना साहस नहीं हो सकता था, पर उनके इष्ट मित्रों ने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की। जानकीदास भी उनके इस कार्य को मौन-व्रत धारण किये देखते और मन-ही-मन हँसते रहे।

पिता का स्वर्गवास होने के पन्द्रह दिन बाद बुलाकीदास ने जानकीदास को बुलाकर कहा—क्रिया-कर्म से छुट्टी मिल गई, अब हमारा-तुम्हारा बटवारा हो जाना चाहिए। जानकीदास तो यह समझे ही बैठे थे कि बटवारा शीघ्र ही होगा। रुपये पैसे की कोठरी में ताला डलवाने का मतलब इसके सिवा और क्या हो सकता था? अतएव उन्होंने बड़े विनम्र भाव से आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—बटवारा! मेरी समझ में तो बटवारे की कोई आवश्यकता है नहीं।

बुलाकीदास रुखाई से बोले—तुम्हारी समझ में न हो, मेरी समझ में तो है।

जानकीदास—क्यों, ऐसी आवश्यकता क्या है?

बुलाकीदास—इसलिए कि मेरी ऐसी ही इच्छा है।

जानकीदास—पिताजी की तो मरते समय तक यही इच्छा रही कि उनके बाद हम लोग मिल-जुलकर रहें।

बुलाकीदास—हाँ, उनकी ऐसी ही इच्छा थी; पर मैं इसके विरुद्ध हूँ। तुम भी होशियार हो, अपना काम देख-भाल सकते हो, इस कारण यही ठीक है कि हम और तुम अलग-अलग अपना-अपना रास्ता देखें।

जानकीदास—पर मैं तो बटवारा नहीं चाहता।

बुलाकीदास—मगर मैं तो चाहता हूँ।

जानकीदास—पिताजी के अन्तिम शब्द याद कीजिए।

बुलाकीदास—वह सब मूर्खता और भावुकता है। उनके जीवन में मैंने कोई कार्य उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं किया, सदैव उनको सन्तुष्ट रक्खा; परन्तु अब उनके पीछे मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हूँ।

जानकी०—मगर इससे पिता जी की आत्मा को कष्ट होगा।

बुलाकी०—मैं फिर कहता हूँ कि यह सब ढकोसला है, बटवारा अवश्य होगा।

जानकीदास—मैं पिताजी के बाद आप ही को पिता की जगह समझता हूँ।

बुलाकीदास—बड़ी प्रसन्नता की बात है। मैं भी तुमको अपने छोटे भाई की ही तरह समझूँगा।

जानकीदास—तो बटवारे का क्या आवश्यकता है?

बुलाकीदास—बटवारा तो अवश्य होगा।

जानकीदास ने देखा, बुलाकीदास उनकी प्रार्थनाओं से रस्सी की तरह और भी अधिक एंठे जा रहे हैं। उन्होंने विवश होकर कहा—जैसे आपकी इच्छा। पर इस कार्य से मुझे अत्यन्त दुःख होगा।

बुलाकीदास ने जानकीदास की इस बात को जैसे सुना ही नहीं।

(४)

जब से बुलाकीदास ने होश सम्भाला, तब से उन्होंने जानकीदास को कभी भ्रातृस्नेह पूर्ण दृष्टि से नहीं देखा। बुलाकीदास की महत्त्वाकांक्षाएं

इतनी बढ़ी-चढ़ी थीं कि उन्होंने अन्य सब भावनाओं को दबा दिया था। जब उनको यह ध्यान आता था कि यदि जानकीदास न होता, तो केवल वही इस सब सम्पत्ति के स्वामी होते, तब जानकीदास के प्रति उनके हृदय में एक भयानक हिंसा का भाव उत्पन्न हो आता था। इस हिंसा-भाव का उनके ऊपर इतना प्रभाव था कि जिस बात से जानकीदास को कष्ट और दुःख पहुँचता, उसी से उन्हें सुख मिलता था। पिता के मरने के समय कोप में ताला डलवाने के कारणों में से जानकीदास को मानसिक कष्ट पहुँचाना भी एक कारण था। बुलाकीदास ने सोचा था कि यदि क्रिया कर्म से छुट्टी पाते ही बटवारा न कराया, तो मेरा बुलाकीदास नाम नहीं। इस दुष्ट को भी तो मालूम हो कि कोई भाई मिला था। कैसा ढोंगी है, कितना सज्जन बनता है! कैसा भोलापन दिखलाता है, जैसे कुछ जानता ही नहीं। और पेट में कतरनी चलती है। मैं तो साफ आदमी हूँ, जो भीतर है, वही बाहर। मुझे कपट नहीं आता। जिसे हृदय से शत्रु समझूँगा, उसके साथ प्रकट में भी शत्रु ही का-सा व्यवहार करूँगा।

बुलाकीदास जानकीदास से कटु-व्यवहार करने पर बड़ा गर्व करते थे। वह समझते थे कि शुद्ध-हृदयता और कपट-शून्यता के अर्थ यही हैं कि जिससे घृणा करे, उसे पग-पग पर कष्ट पहुँचाने की चेष्टा करता रहे। अपने इस स्वभाव को वह बड़ा भारी गुण समझते थे।

बटवारे की बात पक्की हो गई। सरकार की ओर से एक अफ़सर बटवारा करने के लिए नियुक्त हुआ। बटवारा होने में एक सप्ताह लगा। इस अवसर पर जितनी कटुता उत्पन्न की जा सकती थी, उसमें बुलाकीदास ने कुछ कसर नहीं रक्खी मगर जानकीदास का व्यवहार बड़ा विनम्र और शिष्ट था। बुलाकीदास के स्वभाव के लिए जानकीदास की नम्रता आग पर घी का काम करती थी।

यह समझते थे, जानकीदास अपनी साधुता दिखाकर उन्हें दूसरों की दृष्टि में बुरा बनाना चाहते हैं, और आप अच्छे बनना चाहते हैं।

बटवारे में यह दशा हुई कि जो चीजें संख्या में केवल एक थीं उनके दो-दो टुकड़े किये गये। इस अवसर पर अगर जानकीदास कहते कि "भाई साहब, यह चीज़ दो टुकड़े करने से न आपके काम की रहेगी और न मेरे काम की। अतएव इसे आप ही रखिए" तो बुलाकीदास जल-भुनकर राख हो जाते थे। एक बार तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि मुझे तुम्हारा भाग गो-मांस के समान है। मैं केवल अपना भाग लूँगा। यह कहकर वह बड़े गर्व से उपस्थित लोगों की ओर देखने लगे। उन्होंने समझा कि उनके इस व्यवहार पर लोग उन्हें न्याय-प्रिय, लोभ-हीन और स्पष्ट-वादी समझकर मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करते होंगे। इस प्रकार बटवारा होने पर वह अपनी विजय और जानकीदास की पराजय समझकर मन-ही-मन प्रसन्न थे।

इधर जानकीदास के हृदय में, बड़े भाई के इस व्यवहार से, वैराग्य उत्पन्न हो चला था। वह सोचते थे—जब सगे भाई का यह व्यवहार है, तब संसार में और किससे अच्छे व्यवहार की आशा की जा सकती है? बुलाकीदास के इस कार्य पर उनके इष्ट मित्र मुँह पर तो उनकी प्रशंसा करते थे। कहते थे—यह आपने अच्छा किया, जो बटवारा कर लिया। कुछ ऊँच-नीच हो जाती तो उसे कोई कुछ न कहता, सब आप ही को दोष देते, वह तो छोटा भाई बनकर छूट जाता। आजकल का समय देखते हुए यही ठीक था। अब उसका भाग अलग हो गया, चाहे रक्खे चाहे खोवे, आपको क्या!

इष्ट-मित्रों की इन बातों से बुलाकीदास ने अपने इस कार्य को बहुत ही उचित समझा। परन्तु जब किसी न्याय-प्रिय मनुष्य से बात-चीत होती, तब वे ही इष्ट-मित्र कहते थे—अजी बुलाकीदास न जाने कैसे

आदमी हैं, बेकार ही छोटे भाई से अलग हो गये! वह बेचारा तो अलग होने को राज़ी न था बुलाकीदास ने ज़बरदस्ती अलग होकर व्यर्थ ही उससे शत्रुता मोल ली। जानकीदास बड़ा सज्जन आदमी है। इतना सब कुछ हो गया, पर वह अब भी जब बात चलती है, तब यही कहता है कि मैं उन्हें अपने पिता के तुल्य समझता हूँ।

(५)

ऊपर लिखी घटना के बाद छः वर्ष व्यतीत हो गये। इस बीच में बुलाकीदास तथा जानकीदास में उतना ही सम्बन्ध रहा, जितना दो साधारण रिश्तेदारों में होता है। यद्यपि जानकीदास चाहते थे कि घनिष्ठता उत्पन्न हो, पर बुलाकीदास ऐसा व्यवहार रखते थे कि घनिष्ठता उत्पन्न ही नहीं हो सकती थी। अतएव, ऐसी दशा में, जानकीदास को भी विवश होकर अपना व्यवहार परिमित सीमा के भीतर रखना पड़ता था।

जानकीदास ने कपास ओटने की एक नई मिल खोली थी। कुछ दिन तो वह मिल चली; पर पीछे से ऐसी स्थिति आ पड़ी कि पूँजी की कमी के कारण उसका चलना कठिन हो गया। उस मिल को चलाना बहुत ही जरूरी था; क्योंकि जानकीदास ने अपनी पूँजी का बहुत बड़ा हिस्सा उसमें लगा दिया था। यदि वह बन्द कर दी जाती, तो सब पूँजी बट्टे-खाते पड़ी जाती थी। उसके चलाने के लिये रुपयों की आवश्यकता पड़ी। जानकीदास के पास रुपये नहीं थे। वह बड़े असमंजस में पड़ गए। कई दिन तक बड़े चिंतित रहे। अन्त को एक दिन अपनी पत्नी से बोले—न हो एक बार भैया से ही कहूँ। पत्नी मुँह बनाकर बोली—हाँ, भैया तुम्हें रुपये गिन देंगे!

जानकीदास—गिन क्यों न देंगे? बहुत करेंगे ब्याज ले लेंगे। इससे अधिक और क्या हो सकता है?

पत्नी—वह कभी न देंगे। तुम अपने इष्ट मित्रों से क्यों नहीं ले लेते ?

जानकीदास—मेरे इष्ट-मित्रों में इस समय दो एक के सिवा किसी की स्थिति ऐसी नहीं है कि इतने रुपये दे सकें। जो दो-एक ऐसे हैं भी, कि शायद दे सकें, उनसे माँगने का मेरा साहस नहीं होता। आज तक किसी से माँगा नहीं। सोचता हूँ, अगर माँगा, और किसी ने इनकार कर दिया, तो बड़ी लज्जा मालूम होगी। मेरी तो यही इच्छा है कि एक बार भैया से कहूँ। वह इनकार भी कर देंगे, तो चिन्ता नहीं। वह मेरे बड़े हैं, उनसे क्या लज्जा ?

पत्नी—जब वह तुम्हें अपना छोटा नहीं मानते, तो तुम्हें क्या गरज़ पड़ी है कि तुम उन्हें बड़ा मानो ? यह तो वही कहावत हुई कि "मान न मान, मैं तेरा मेहमान"। कुछ आत्म-गौरव भी होना चाहिए। जब वह तुम्हें कुछ ध्यान में नहीं लाते, तो तुम क्यों चिमटते हो ?

जानकीदास कुछ झेंपकर बोले—इसमें आत्म-गौरव को घसीटना व्यर्थ है। आत्म-गौरव गैरों के सामने काम में लाया जाता है, अपनों के—खासकर बड़ों के सामने आत्म-गौरव नहीं चलता।

पत्नी—जो चलाना चाहते हैं, वह सभी जगह चलाते हैं। मेरे चाचा ने एक बार अपने पिताजी से दस रुपये माँगे थे। पिता जी ने उत्तर दिया—'क्या मेरे घर में टकसाल है ? जवान हो गये, पढ़ लिख गए, अब कमाओ-खाओ। मुझ बुड्ढे का मुंह क्यों ताकते हो ?', यह बात मेरे बाबा जी ने वैसे ही हँसकर कह दी थी। इसके बाद वह रुपये देने लगे, पर चाचा ने नहीं लिये। उन्होंने बहुतेरा कहा-सुना, चाचा किसी तरह रुपये लेने को राज़ी नहीं हुए। उसके बाद चाचा ने फिर कभी भूलकर बाबा से एक पैसा नहीं माँगा। मरते-मरते मर गए, दुःख भोगे, तंगी सही, पर बाबा से कभी नहीं माँगा। जिनमें आत्म-

गौरव होता है वे उसे सब जगह बरतते हैं, चाहे अपना हो चाहे पराया।

परन्तु जानकीदास को यह आदर्श पसन्द न आया। उन्होंने उस समय पत्नी से केवल इतना कहकर पिंड छुड़ाया कि अच्छा देखा जायगा।

दूसरे दिन जानकीदास बुलाकीदास के पास गए। बुलाकीदास ने उनको देखकर रुखाई से कहा—कहो, सब कुशल तो है?

जानकीदास—जी हाँ सब आपकी कृपा है।

बुलाकीदास अपना काम करने लगे। जानकीदास कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। फिर बोले—आपके पास एक काम से आया था।

बुलाकीदास—किस काम से?

जानकीदास—मैंने एक मिल खोली है—कपास ओटने की आपने चाहे सुना भी हो।

बुलाकीदास—हाँ सुना तो है।

जानकीदास—उसको चलाने के लिये इस समय कुछ रुपयों की आवश्यकता थी। मेरे पास इस समय इतने रुपये नहीं हैं।

बुलाकी०—तो फिर मैं क्या करूँ?

एक प्रकार से बुलाकीदास ने जानकीदास का तात्पर्य समझ लिया, और उसका उत्तर 'तो फिर क्या करूँ' इन शब्दों में दे दिया। परन्तु जानकीदास ने इन शब्दों पर ध्यान न देकर कहा—आप रुपयों का प्रबन्ध कर देते, तो अच्छा था।

बुलाकीदास—(सूखी हंसी हंसकर) मेरे पास इतने रुपये कहाँ से आये?

जानकीदास—आप प्रबन्ध कर सकते हैं।

बुलाकीदास—मैं तुम्हारे लिये भीख माँगूं, या उधार लूँ? मुझे इन झगड़ों से क्या मतलब?

जानकीदास—मैं सूद दे दूँगा।

बुलाकीदास—मगर मुझे सूद लेना हो, तब न ? जब सूद ही देना है, तो दुनियाँ पड़ी है, चाहे जहाँ से ले आओ।

जानकीदास—दुनिया भर की दूसरी बात है, आपकी दूसरी। दुनिया भर में माँगने का मेरा साहस नहीं पड़ता।

बुलाकी० जब इतने निस्पृह हो, तो ऐसा काम क्यों करते हो जो तुम्हारे बूते न हो सके ?

जानकीदास—आपसे तो मुझे बड़ी आशा थी।

बुलाकीदास—यह सब तुम्हारी नासमझी है, मुझ से तुम्हें कोई आशा न रखनी चाहिए।

जानकीदास को यह बात बड़ी बुरी लगी। उन्होंने कुछ आवेश में आकर कहा—अच्छी बात है, देखा जायगा।

यद्यपि 'देखा जायगा' इन वाक्यों से जानकीदास का तात्पर्य था कि रुपयों का और प्रबन्ध कर लिया जायगा; पर बुलाकीदास ने इसका कुछ और ही तात्पर्य समझा। उन्होंने मुंह बना कर कहा—देखा क्या जायगा, मैं तुम्हारे दरवाजे पर कभी माँगने न आऊँगा, और जो आऊँ, तो तुम मुझे दुतकार देना।

जानकीदास अपना-सा मुंह लेकर लौट आए। उन्हें पत्नी की बात याद आई। सोचा उसने ठीक ही कहा था। उसकी बात न मानकर आया, और व्यर्थ ही अपनी बात गँवाई।

(६)

जानकीदास बड़ी विकट स्थिति में पड़ गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका सर्वस्व स्वाहा हुआ जाता है। मिल चलाने के लिए रुपये नहीं हैं। अगर मिल नहीं चलाई जाती, तो जो कुछ है, वह सब नष्ट हुआ जाता है। अतएव उन्होंने लज्जा को तिलांजलि देकर एक मित्र से अपनी कष्ट-कथा कही। उसी मित्र ने उन्हें सब कुछ सहायता दी। कुछ रुपये उन्होंने स्त्री के गहने गिरवी रखकर प्राप्त किये। इसी

इन दोनों कार्यों ने उन्हें महान् मानसिक क्लेश हुआ, पर करते क्या? आवश्यकता और स्थिति सब कुछ करा लेती है। थोड़े ही समय में जानकीदास का काम खूब चल निकला। धीरे-धीरे उन्होंने मित्र का ऋण भी चुका दिया, और स्त्री के गहने भी छुड़ा लिये। इस प्रकार उनकी प्रतिदिन उन्नति होती गई।

इधर काल-चक्र ने बुलाकीदास पर अपना वार किया। उन्होंने अपना काम तो खूब बढ़ा लिया, पर उस काम में उतनी आमदनी नहीं हुई, जितनी की आशा थी। उधर खर्च यथेष्ट था। इसका कारण एक यह भी था कि बुलाकीदास किसी का विश्वास न करते थे। सारा संसार उन्हें बेईमान और धूर्त्त दिखलाई पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि जब लोगों ने यह देखा कि उनकी ईमानदारी का मूल्य समझने वाला ही कोई नहीं, उलटे वे सन्देह की दृष्टि से देखे जाते हैं, तो कुछ ने, जो अपने सिद्धान्त पर अधिक दृढ़ थे, बेईमानी तो नहीं की, पर काम की ओर अधिक ध्यान देना और परिश्रम करना कम कर दिया। और कुछ ने, जो सिद्धान्त के पक्के न थे, चिढ़कर बेईमानी शुरू कर दी। उन्होंने सोचा, बड़ा सयाना बनता है, और दुनिया भर को बेईमान समझता है, तो हम भी इस पर क्यों न हाथ साफ़ करें। देखें, यह कितना चालाक है। इन्हीं सब कारणों से ऐसी परिस्थिति हो गई, कि बुलाकीदास का दिवाला होने की नौबत आ गई। अब बुलाकीदास बहुत घबराए। उसके हाथ-पैर फूल गये। जो जितना ही अधिक घमंडी और अहंकारी होता है, वह उतना ही असफलता से डरता है, और असफल होने पर उतना ही भीरू तथा कायर हो जाता है। यही दशा बुलाकीदास की भी हुई। उन्होंने स्थिति सँभालने की बड़ी चेष्टा की, बहुत दौड़-धूप की। जिनसे कभी सीधे मुंह बात नहीं करते थे। उनसे भी उन्होंने सहायता माँगी, पर कोई आशा-जनक बात नहीं हुई।

बुलाकीदास की पत्नी ने उनसे कहा— न हो, जानकी से सहायता लो। वह तो बेचारा सदा तुम से हेल-मेल रखने की कोशिश में रहता है, तुम्हीं उससे फटे रहते हो। मुझे पूरा भरोसा है कि वह तुम्हारी सहायता करेगा। आजकल उसकी चढ़ती कला भी है।

बुलाकीदास पत्नी की बात सुन कर कुछ क्रोध में आकर बोले—उस नीच से मैं सहायता माँगूंगा? चाहे मेरा सर्वस्व चला जाय, पर मैं उससे एक पैसा न लूंगा! जिसको मैंने दुतकार दिया था, उसी से सहायता माँगूं? गली-चलतों से मैं सहायता माँगने के लिए तैयार हूँ, पर उससे कुछ न कहूँगा।

मगर बुलाकीदास स्थिति संभालने का कुछ प्रबन्ध न कर सके। सब ओर से निराश होकर एक बार उनका ध्यान फिर जानकीदास की ओर गया। सोचा, यदि उस समय उसको सहायता कर दी होती, तो आज मुझे इतना कष्ट न सहन भोगना पड़ता। यदि मैं जाऊँ, तो मुझे विश्वास है कि वह इनकार नहीं करेगा। वह तो बहुत कुछ लिपटना चाहता है; पर मैं ही उसे मुंह नहीं लगाता।

बहुत कुछ सोच विचार करने पर बुलाकीदास ने यही स्थिर किया कि चाहे वह दिवालिए ही क्यों न हो जायं, पर जानकीदास से सहायता के लिए प्रार्थना न करेंगे। इस समय जानकीदास के ऊपर उनका क्रोध और घृणा और भी अधिक हो गई; क्योंकि जानकीदास की दशा अच्छी थी और वह इस समय कष्ट में थे।

इधर जानकीदास बुलाकीदास की दशा सुनकर बड़े चिंतित हुए। उन्होंने सारा हाल अपनी पत्नी से कहा। पत्नी ने कुछ हँसकर कहा—तुमसे उन्होंने जो व्यवहार किया था, उसका ईश्वर ने यह बदला दिया है।

जानकीदास—तो इस समय मुझे क्या करना चाहिए?

पत्नी—करोगे क्या, अपने घर में आराम से बैठे रहो। जब वह तुम्हारे पास आवें, कुछ कहें-सुनें, तब देखा जायगा।

जानकीदास ने कहा—यही ठीक है। मैं भी चाहता हूँ कि उनका अभिमान नष्ट करूँ। यदि उन्होंने मुझसे सहायता मांगी, तो सहायता मैं अवश्य करूँगा; पर उनका अभिमान भी नष्ट हो जायगा।

दूसरे दिन उन्हें पता लगा कि बुलाकीदास चाहे आत्महत्या भले ही कर लें, पर उनसे सहायता न माँगेंगे। यह सुनकर उन्हें बड़ी चिंता हुई। रात भर इसी उधेड़-बुन में रहे कि क्या करें। वह चाहते थे कि भाई की सहायता की जाय; पर प्रश्न यह था कि वह उस सहायता को स्वीकार कैसे करेंगे। उन्होंने सोचा अगर मैं खुद जाकर उनसे कहूँ कि मेरे योग्य जो कार्य हो, बतलाइए, तो ठीक होगा। पर पीछे से उन्हें ध्यान आया कि ऐसा करने से वह और भी अधिक चिढ़ जायेंगे। समझेंगे कि यह मुझे लज्जित करने और इस प्रकार अपना बदला लेने के लिए आया है। फिर सोचा, किसी और आदमी के द्वारा सन्देश भिजवाऊँ पर यह भी ठीक नहीं। भैया बड़े हठी हैं वह इसे भी पसन्द न करेंगे। इसी प्रकार बहुत कुछ सोचा, पर कोई बात न सूझी। अन्त को ऊबकर उन्होंने कहा—हटाओ भी झगड़ा। यदि उन्हें सौ दफ़े ग़रज़ होगी, तो मुझ से सहायता मांगेंगे। नहीं तो मुझे क्या ? जैसा किया, वैसा भोगें। मेरे ही साथ उन्होंने कौन बड़ी नेकी की है ? पग-पग पर उन्होंने मुझे अपमानित और लज्जित करने की चेष्टा की। अन्त को ऐसे समय पर भी, जब मेरा सर्वनाश होने को था, उन्होंने सहानुभूति का एक शब्द कहना तो अलग, उलटे मुझे नासमझ बनाया।

परन्तु इस विचार के बाद ही उन्हें पिता के अन्तिम शब्द याद आए कि 'बेटा, कुछ भी हो, बुलाकीदास तुम्हारा बड़ा भाई है, इसका ध्यान सदैव रखना।' इन शब्दों के याद आते ही एकदम उनका जी भर आया और आँखों से अश्रु-पात होने लगा। उन्होंने सोचा, चाहे जैसे हो, भैया को इस कष्ट से बचाना ही होगा; परन्तु इस युक्ति से कि उनकी सहायता भी हो जाय और उन्हें यह भी पता न लगे कि किसने सहायता दी है।

(७)

बुलाकीदास अपनी कोठी के कमरे में बैठे चिन्ता सागर में मग्न थे। वह सोच रहे थे कि यदि कल तक रुपयों का प्रबन्ध न हुआ, तो दिवाला निकल जायगा! सारा मान सारी मर्यादा मिट्टी में मिल जायगी! पिता का नाम डूब जायगा! क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? इस समय ईश्वर भी मुझे भूल गया! हाय, मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँगा?

यह सोचते-सोचते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे, हिचकी बंध गई। सोचा, अब आत्महत्या करने के सिवाए और कोई उपाय नहीं है। वह बैठे ऐसी बातें सोच रहे थे कि कमरे के द्वार पर से नौकर ने कहा—सरकार!

बुलाकीदास ने झटपट रूमाल से आँसू पोंछकर, अपने को संभालकर, कहा—क्या है?

नौकर—सरकार, एक चिट्ठी है।

बुलाकीदास—ले आओ।

नौकर ने आकर एक लम्बा और मोटा लिफ़ाफ़ा दे दिया। बुलाकीदास ने लिफ़ाफ़ा खोला। लिफ़ाफ़े के अन्दर से ८० हज़ार रुपये के नोट और एक छोटा-सा पत्र निकला। पत्र में लिखा था—

"श्रीमान्, मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करेंगे।

आपका एक परम हितैषी"

बुलाकीदास के शरीर में बिजली दौड़ गई। वह तुरन्त खड़े हो गए, और नोटों को काँपते हुए हाथों से लिफ़ाफ़े में रखते हुए बोले—यह पत्र कौन लाया है?

नौकर—एक आदमी।

बुलाकीदास—उसे तुरन्त मेरे सामने लाओ।

नौकर चला गया और लौट कर बोला—सरकार, वह तो चला गया।

बुलाकी०—एँ, चला गया ?

नौकर—हाँ सरकार।

बुलाकी०—तुम उसे पहचानते हो ?

नौकर—नहीं सरकार, मैं नहीं पहचानता। आज ही उसे देखा, बिलकुल नया आदमी था।

बुलाकीदास अवाक् रह गए। बड़ी देर तक सोचते रहे। अनुमान लगाते रहे कि यह काम किसका हो सकता है? पर कुछ समझ में न आया। अन्त में हँसकर बोले—यह ईश्वर की दी हुई सहायता है। अब क्या, अब तो पौ बारह हैं।

(८)

दूसरे दिन जानकीदास बुलाकीदास के पास आए। बुलाकीदास ने उन्हें देखते ही भौंहें चढ़ा लीं। जानकीदास ने कहा—भैया, मैंने सुना······

जानकीदास इतना ही कह पाए थे कि बुलाकीदास कड़क कर बोले—जो कुछ सुना, ठीक सुना। यह सब शत्रुओं की चाल थी। पर मैं ऐसा वैसा आदमी नहीं हूँ। उड़ती चिड़िया पहचानता हूँ। मैंने पहले ही से प्रबन्ध कर लिया था। अब आज सब के मुँह धुआँ हो जाएंगे। तुम शायद इसीलिए आए होगे कि कदाचित् मैं तुम से कुछ सहायता माँगूं। पर याद रक्खो बुलाकीदास अपनी बात का पक्का है। मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि ऐसा अवसर कभी न आवेगा कि तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़े।

जानकी०—भैया, मैं इस योग्य ही नहीं कि आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।

बुलाकी०—दुनियादारी की बातें न बघारो। मैं तुम्हें खूब समझता हूँ। तुम ऊपर से 'म्याउं-म्याऊं' करते हो, पर तुम्हारे पेट में छुरी चलती है। मेरे सर्वनाश का दृश्य देखकर अपनी आँखें ठण्डी करने आए होगे। क्यों ?

जानकीदास—भैया ऐसा मत कहिए। ईश्वर ऐसा न करे। आप तो व्यर्थ हीं मेरे सम्बन्ध में ऐसे-ऐसे विचार बना लिया करते हैं। मैं तो आप को सदा पिता के तुल्य समझता हूँ, और समझता रहूँगा।

बुलाकी०—बड़े साधु हो! क्या कहने हैं, अच्छा तो अब देख सुन लिया। यह विश्वास रक्खो कि बुलाकीदास का कभी बाल भी बाँका नहीं हो सकता।

जानकीदास—ईश्वर न करे।

थोड़ी देर में जानकीदास उठकर चल दिये। यद्यपि बड़े भाई का व्यवहार पहले की अपेक्षा और भी अधिक कटु था, परन्तु फिर भी उनके मुख पर प्रसन्नता तथा मुस्कराहट थी, और हृदय में सन्तोष।

: २ :

मां की आत्मा

हे भगवन्, माँ की आत्मा में तूने कहाँ की ममता भर दी है। निस्वार्थ प्रेम, सच्चा स्नेह, अकृत्रिम प्रणय देखना हो, तो माँ के हृदय को देखो। यदि आत्मोत्सर्ग का अभ्यास करना हो, तो माता से सीखो। यदि करुणा का तत्व जानना हो, तो माता के अन्तःकरण का अध्ययन करो। यदि परम पवित्र तीर्थ में स्नान करना हो तो माँ के आँसुओं से भीगो। यदि इस पाप पूर्ण संसार में देव-सेवा करके निष्पाप होना हो, तो निरन्तर मातृचरण की धूल में लोटो।

"हे राम" ये शब्द केवल मुंह से नहीं निकले थे। इनसे एक व्यथित हृदय की समस्त व्यथा भरी हुई थी। ज्वालामुखी से जो लपटें निकलती हैं। उन्हें कहीं साधारण दीपशिखा न समझ लेना। किस अनन्त अग्नि को वे बाहर निकालने का उद्योग करती हैं, इसका अनुमान कर लेना कोई साधारण काम नहीं। राम तुम्हारे सिवा दुःख में प्राणी किसे पुकार सकता है? हे दीन-दुखियों के एक-मात्र आधार, इस स्वार्थमय, जघन्य संसार में उन्हें और कौन आश्रयदाता है?

लम्बी साँस के साथ "हे राम" कहती हुई सेवती ने चूड़ी पीसनी शुरू की। छोटा-सा घर है। वह कच्चा है। उसमें केवल दो कोठरियां, एक दालान और एक छोटा-सा आंगन है। आज, माघ के महीने में उसे खड़ा देखकर यही आश्चर्य होता है कि वह पिछली बरसात में टिक कैसे गया।

एक कोठरी में दो खाटें पड़ी हैं। खाटें क्या, झिलंगे हैं। उन पर फटी-पुरानी, मैली-कुचैली, कथरीं-गुदड़ियां धरी हैं। दूसरी कोठरी में एक फटी चटाई, दो फटे बोरे पड़े हैं। वे इस योग्य हैं कि यदि

भारत की आर्थिक दशा दिखाने के लिये कोई प्रदर्शिनी की जाय, तो उसमें उन्हें सर्वोच्च पुरस्कार (Grand Prize) मिले। एक कोने में दो-तीन छोटे बड़े घड़े और भज्भर पड़े हैं। चुहिया बार-बार आती है और कूद कर उनके गले पर जाकर, उनके भीतर झाँक कर अपने बिल को लौट जाती है। शायद किसी जमाने में उनमें सौदा सामान रक्खा जाता रहा होगा। एक ओर एक डोरी पर कई फटे पुराने कपड़े टंगे हैं। बस, इतनी गृहस्थी के बूते पर इस घर के लोग 'गृहस्थ' कहे जाते हैं।

नहीं, नहीं, मैं एक बात तो भूल ही गया। दालान में एक चूल्हा भी है। देखने में जान पड़ता है, वह कई दिनों से नहीं जला। ठीक उसके ऊपर खूंटियों में दो काली-काली हांडियाँ टंगी हैं।

पाठक, यह घर है किसका ? पं० रामदहिन दूबे का। दूबे जी अब इस संसार में नहीं, उन्हें मरे तीन वर्ष हो चुके। अब उनकी विधवा सेवती और सात बरस का लड़का रामसूरत उनकी स्मृति बनाए हुए हैं।

दूबेजी एक लोअर प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। उन्हें ८) मिलते थे उसी में वे सुखं दुखम् घर चलाते थे। उनके मरने पर घरवालों का कोई आश्रय न रह गया।

स्त्री बेचारी न पढ़ी-लिखी थी, न कोई कला-कौशल ही जानती थी। घर का खर्च चलता तो कैसे ? हाँ उसके तन पर कई गहने अवश्य थे। वे एक-एक करके आधे दामों पर बिक गये। तब भूखों मरने की नौबत आई। पर माँ की आत्मा भला लड़के को दुखी देख सकती है ? सेवती ने ५०) पर मकान बंधक रख कर साल भर किसी प्रकार उसका पेट भरा। इधर महाजन ने तकाज़ा शुरू किया। पहले तो वह महीनों तक टालती रही। जब कोई उपाय न देख पड़ा तब उसने साफ कह दिया कि भाई रुपये मेरे दिये न दिये जायेंगे, तुम्हारे जो मन आवे, करो। बस, इसी की तो परीक्षा थी। महाजन को शील कहाँ !

भला महाजनी और शील कहीं एक साथ रहे हैं !! राम कहिये !!! उसने चट नालिश करके ५६) पर मकान नीलाम करा लिया। ३७) की डिगरी खाते में बनी रही।

अब तीन दिन हुए, उसने सेवती को जबानी नोटिस दे दिया है कि माघी पूर्णिमा से या तो किराया दिया करो या मकान खाली कर दो। अब तक मैंने बहुत नुकसान उठाया अब नहीं सह सकता।

गांव वाले उसकी इस दयालुता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। दूसरा नीलामदार होता, तो उसने तुरन्त कब्जा ले लिया होता। प्रशंसा न करते, तो जाते कहाँ ? सारे गाँव का साहूकार तो वही था।

रामसूरत को इन बातों की कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता कैसे हो ? एक तो उसकी उम्र नहीं, दूसरे सिर पर माता का छत्र है वह अपने खेलने-कूदने में मस्त रहता है। जिस दिन मकान नीलाम हो रहा था, वह और लड़कों के संग खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा था।

जब एक, दो, तीन होकर आखिरी बोली बोली गई थी, तब आनन्द की किलकारी मारता हुआ उछलने लगा था। बेचारी माता भीतर बैठी-बैठी रक्त के आंसू रो रही थी, और 'उत्तर राम चरित' के राम की भाँति पुटपाक में पक रही थी, उसको सबसे भारी चिन्ता रामसूरत के भविष्य की थी।

रामसूरत, जाने आज के बाद तेरे भाग्य में वे आनन्द की किलकारियां हैं या नहीं।

सेवती में कोई विद्या तो न थी, पर बाहुबल था। उसने घर-घर यह प्रस्ताव किया कि या तो मुझसे आटा पिसवाया करो, पानी भरवाया करो या और जो मेहनत-मजदूरी चाहो, करालो। पर इस पर कोई कैसे सम्मत होता ? भला हिन्दू समाज पंडितानी से कहीं चाकरी करा सकता है ? ऐसा हो तो वह आज ही रसातल को न चला जाय ? अन्ततोगत्वा उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार सूझने लगा। किस के लिए कुछ अपने लिये नहीं, अपने एक मात्र प्राण रामसूरत—लल्लू—के लिए। जिस प्रकार कछुई पानी में बैठी-बैठी, बालू में

गड़े अपने अण्डों की मंगल-कामना किया करती है, उसी भाँति लल्लू चाहे जहाँ रहे, सेवती का जी उसी में लगा रहता, उसी की शुभकामना किया करती।

आज लल्लू के संध्या को खाने के लिए घर में कुछ भी नहीं। सत्तू की अन्तिम मुट्ठी खाकर वह खेलने गया है। आज ही क्या, आज से आगे सेवती के लिये कुछ नहीं हो सकता। यों होने को तो एक उपाय है। पर क्या वह उसके लिये तैयार होगी? कदापि नहीं। इसी से उसने चूड़ी खाकर प्राण देना निश्चित किया।

लल्लू का कष्ट क्या अपनी आंखों देख सकती है? कभी नहीं। क्या वह लल्लू से अपने मुंह से कह सकती है—"बेटा, तुम्हारे खाने के लिये कुछ नहीं है।" कभी नहीं, कभी नहीं—ऐसा अवसर आने के पहले ही वह खुशी खुशी प्राण देकर अपना जी ठण्डा करेगी।

सेवती, सेवती, तुम यह क्या अनर्थ कर रही? सोचो तो, तुम भयंकर पाप-गर्त्त में कूद रही हो! अब भी समय है। चेत जाओ—'जीवन्नरोभद्रशतानि पश्येत्।' पर नहीं, मैं भूल रहा हूँ, वे भारत के स्वर्णमय दिनों की बातें थीं। अब तो इस अभागे देश में दुःख के सिवाय सुख कहाँ! सेवती तुम मरो, अवश्य मरो, इसी में तुम्हें चिरशांति मिलेगी। हतभाग्य भारतवासियो प्राण देने ही में तुम्हारे लिये जीवन है।

चूड़ी पिस गई। सेवती ने उसे जिस धीरज के साथ फांक कर पानी पिया, उस धीरज के साथ शायद ही किसी योगी ने आज तक ब्रह्माण्ड द्वारा प्राण-वायु विमोचन के लिये समाधि लगाई हो। परन्तु इसके बाद वह अपने को न सम्भाल सकी—"हाय लल्लू, अब तेरा क्या होगा! क्या तू सचमुच ही सपना हो जायगा!" कह कर रोते-रोते वह धड़ाम से आंगन में गिर पड़ी। पर शीघ्र ही सम्भल कर रोती-रोती अपनी टूटी खाट पर जाकर मुंह ढक के पड़ी रही।

सोओ सेवती, तुम शांतिपूर्वक महानिद्रा में सोओ, अब लल्लू की चिन्ता का समय नहीं। उसके सिर पर भगवान् हैं।

: ३ :

बड़े घर की बेटी

(१)

बेनीमाधवसिंह गौरीपुर गाँव के जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धनधान्य-सम्पन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्तिस्तम्भ थे। कहते हैं, इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, अब उसकी जगह एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में पंजर के सिवा और कुछ शेष न रहा था, पर दूध शायद बहुत देती थी क्योंकि एक-न-एक आदमी हांडी लिए उसके सिर पर सवार ही रहता था। बेनीमाधवसिंह अपनी आधी से अधिक सम्पत्ति वकीलों की भेंट कर चुके थे। उनकी वर्तमान वार्षिक आय एक हज़ार से अधिक न थी ठाकुर साहब के दो बेटे थे। बड़े का नाम श्रीकण्ठसिंह था। उन्होंने बहुत दिनों के परिश्रम और उद्योग के बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तर में नौकर थे। छोटा लड़का लालबिहारीसिंह दोहरे बदन का सजीला जवान था। मुखड़ा भरा हुआ, चौड़ी छाती, भैंस का दो सेर ताज़ा दूध वह सवेरे पी जाता था। श्रीकण्ठसिंह की दशा उसके बिल्कुल विपरीत थी। इन नेत्र प्रिय गुणों को उन्होंने इन्हीं दो अक्षरों पर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरों ने उनके शरीर को निर्बल और चेहरे को कान्तिहीन बना दिया था। इसी से वैद्यक ग्रन्थों पर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वैदिक औषधियों पर उनका अधिक विश्वास था। साँझ सवेरे उनके कमरे से प्रायः खरल की कर्णमधुर ध्वनि सुनाई दिया करती थी। लाहौर और कलकत्ते के वैद्यों से बड़ी लिखा-पढ़ी रहती थी।

श्रीकण्ठ इस अंग्रेज़ी डिग्री के अधिपति होने पर भी अंग्रेज़ी

सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न थे; बल्कि वह बहुधा बड़े ज़ोर से उनकी निन्दा और तिरस्कार किया करते थे। इसी से गाँव में उनका सम्मान था। दशहरे के दिनों में वह बड़े उत्साह से रामलीला में सम्मिलित होते और स्वयं किसी-न-किसी पात्र का पार्ट लेते। गौरीपुर में रामलीला के वही जन्मदाता थे। प्राचीन हिन्दू-सभ्यता का गुण-गान उनकी धार्मिकता का प्रधान अंग था। आज-कल स्त्रियों का कुटुम्ब में मिल-जुल कर रहने की ओर जो अरुचि होती है, उसे वह जाति और देश के लिए बहुत ही हानिकर समझते थे। यही कारण था कि गाँव की ललनाएं उनकी निन्दक थीं। कोई कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझने में भी संकोच न करती थीं, स्वयं उनकी पत्नी को ही इस विषय में उनसे विरोध था। वह इसलिए नहीं कि उसे अपने सास, ससुर, देवर, जेठ से घृणा थी, बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहन करने और तरह देने पर भी परिवार के साथ निर्वाह न हो सके, तो आए दिन के कलह से जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकाई जाय।

आनन्दी एक बड़े उच्च-कुल की लड़की थी। उसके बाप एक छोटी-सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज़, बहरी, सिकरे, झाड़ फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के भोग्य पदार्थ हैं, वे सभी उनके यहाँ विद्यमान् थे। भूपसिंह नाम था। बड़े उदारचित्त प्रतिभाशाली पुरुष थे; पर दुर्भाग्य, लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैव योग से सब-की सब जीवित रहीं। पहली उमङ्ग में तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोलकर किये; पर जब पन्द्रह बीस हजार का कर्ज़ सिर पर हो गया, तो आँखें खुलीं, हाथ समेट लिया। आनन्दी चौथी लड़की थी। वह अपनी सब बहनों से अधिक रूपवती और गुण शीला थी। इसी से ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे। सुन्दर सन्तान को कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं। ठाकुर साहब बड़े धर्म-संकट में थे कि

इसका विवाह कहाँ करें। न तो यही चाहते थे कि ऋण का बोझ बढ़े और न यह स्वीकार था कि इसे अपने को भाग्यहीन समझना पड़े। एक दिन श्रीकण्ठ उनके पास किसी चन्दे का रुपया मांगने आये। शायद नागरी-प्रचार का चन्दा था। भूपसिंह उसके स्वभाव पर रीझ गये और धूम-धाम से श्रीकण्ठसिंह का आनन्दी के साथ विवाह हो गया।

आनन्दी अपने नये घर में आई, तो यहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही देखा। जिस टीम-टाम की उसे बचपन से ही आदत पड़ी हुई थी, वह यहाँ नाम मात्र को भी न थी। हाथी घोड़ों का तो कहना ही क्या, कोई सुन्दर सजी बहली तक न थी। रेशमी स्लीपर लाई थी, पर यहाँ बाग़ कहां! मकान में खिड़कियाँ तक न थीं, न जमीन का फर्श, न दीवार पर तसवीरें। वह एक सीधा-सादा देहाती गृहस्थ का मकान था; किन्तु आनन्दी ने थोड़े ही दिनों में अपने को इस नई अवस्था के ऐसे अनुकूल बना लिया, मानो उसने विलाप के सामान कभी देखे ही न थे।

(२)

एक दिन दोपहर के समय लालबिहारीसिंह दो चिड़ियां लिए हुए आया और भावज से बोला--'जल्दी से पका दो। मुझे भूख लगी है।' आनन्दी भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। अब यह नया व्यंजन बनाने बैठी। हांडी में देखा तो घी पाव-भर से अधिक न था। बड़े घर की बेटी किफायत क्या जाने। उसने सब घी माँस में डाल दिया। लालबिहारी खाने बैठा, तो दाल में घी न था, बोला दाल में घी क्यों नहीं छोड़ा?

आनन्दी ने कहा—घी सब मांस में पड़ गया।

लालबिहारी ज़ोर से बोला—अभी परसों घी आया है, इतनी जल्दी उठ गया?

आनन्दी ने उत्तर दिया—आज तो कुल पाव-भर रहा होगा। सब मैंने माँस में डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य ज़रा-ज़रा-सी बात पर तनक जाता है। लालबिहारी को भावज की यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई। तनक कर बोला—मैके में तो चाहे घी की नदी बहती हो?

स्त्री गालियाँ सह लेती हैं, मार भी सह लेती हैं, पर मैके की निन्दा उससे नहीं सुनी जाती। आनन्दी मुँह फेर कर बोली—हाथी मरा भी तो नौ लाख का, वहाँ इतना घी नित्य नाई कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पटक दी और बोला—जी चाहता है, जीभ पकड़ कर खींच लूँ।

आनन्दी को भी क्रोध आया। मुँह लाल हो गया, बोली—वह होते तो आज इसका मजा चखा देते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुर से न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण ज़मींदार की बेटी थी। जब जी चाहता, उस पर हाथ साफ कर लिया करता था। उसने खड़ाऊँ उठाकर आनन्दी की ओर ज़ोर से फेंकी और बोला—जिसके गुमान पर फूली हुई हो उसे भी देखूँगा और तुम्हें भी।

आनन्दी ने हाथ से खड़ाऊँ रोकी, सिर बच गया; पर अंगुली में बड़ी चोट आई। क्रोध के मारे हवा से हिलते हुए पत्ते की भांति कांपती हुई अपने कमरे में आकर खड़ी हो गई। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमण्ड होता है। आनन्दी लहू का घूंट पीकर रह गई।

(३)

श्रीकण्ठसिंह शनिवार को घर आया करते थे। बृहस्पति को यह घटना हुई थी। दो दिन तक आनन्दी कोपभवन में रही न कुछ खाया न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्त में शनिवार को वह नियमानुकूल सन्ध्या-समय घर आये और बाहर बैठकर कुछ इधर-उधर की बातें, कुछ

देश और काल संबन्धी समाचारों तथा कुछ नये मुकद्दमों आदि की चर्चा करने लगे। यह वार्तालाप दस बजे रात तक होता रहा। गाँव के भद्र पुरुषों को इन बातों में ऐसा आनन्द मिलता था कि खाने-पीने की भी सुधि न रहती थी। श्रीकण्ठ को पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। दो तीन घण्टे आनन्दी ने बड़े कष्ट से काटे। किसी तरह भोजन का समय आया। पंचायत उठी। जब एकान्त हुआ, तब लालबिहारी ने कहा—भैया, आप ज़रा घर में समझा दीजियेगा कि मुँह संभालकर बात-चीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधवसिंह ने बेटे की ओर से साक्षी दी—हां, बहू बेटियों का यह स्वभाव अच्छा नहीं कि पुरुषों के मुंह लगें।

लालबिहारी—वह बड़े घर की बेटी है तो हम लोग भी कोई कुर्मी कहार नहीं हैं।

श्रीकण्ठ ने चिन्तित स्वर से पूछा—आख़िर बात क्या हुई?

लालबिहारी ने कहा—कुछ भी नहीं; यों ही आप ही आप उलझ पड़ी। मैके के सामने हम लोगों को कुछ समझती ही नहीं।

श्रीकण्ठ खा-पीकर आनन्दी के पास गए। वह भरी बैठी थी। यह हज़रत भी कुछ तीखे थे। आनन्दी ने पूछा—चित्त तो प्रसन्न है?

श्रीकण्ठ बोले—बहुत प्रसन्न है; पर तुमने आज-कल घर में यह क्या उपद्रव मचा रखा है?

आनन्दी की तेवरियों पर बल पड़ गए और झुंझलाहट के मारे बदन में ज्वाला-सी दहक उठी। बोली जिसने तुमसे यह आग लगाई है, उसे पाऊं तो उसका मुँह झुलस दूँ।

श्रीकण्ठ—इतनी गरम क्यों होती हो? बात तो कहो।

आनन्दी—क्या कहूँ, यह मेरे भाग्य का फेर है। नहीं तो एक गंवार छोकरा, जिसको चपरासगिरी करने का ढंग नहीं, मुझे खड़ाऊँ से मार कर यों न अकड़ता।

श्रीकण्ठ—सब साफ़ साफ़ हाल कहो तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनन्दी—परसों तुम्हारे लाड़ले भाई ने मुझसे मांस पकाने को कहा। घी हांडी में पाव भर से अधिक न था। वह मैंने सब मांस में डाल दिया जब खाने बैठा तो कहने लगा, दाल में घी क्यों नहीं है? बस इसी पर मेरे मैके को भला-बुरा कहने लगा। मुझ से न रहा गया। मैंने कहा कि वहां इतना घी तो नाई कहार खा जाते हैं और किसी को जान भी नहीं पड़ता। बस इतनी-सी बात पर इस अन्यायी ने मुझ पर खड़ाऊँ फेंक मारी। यदि हाथ से न रोक लेती तो सिर फट जाता। उसी से पूछो कि मैं ने जो कुछ कहा है, वह सच है या झूठ?

श्रीकण्ठ की आंखें लाल हो गईं। बोले—यहां तक हो गया! इस छोकरे का यह साहस!

आनन्दी स्त्रियों के स्वाभावनुसार रोने लगी; क्योंकि आंसू उनकी पलकों पर रहते हैं। श्रीकंठ बड़े धैर्यवान और शान्त पुरुष थे। उन्हें कदाचित् ही क्रोध आता था। पर स्त्रियों के आंसू पुरुषों की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं। रात भर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नता के कारण पलक तक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बाप के पास जाकर बोले—दादा, अब इस घर में मेरा निर्वाह न होगा।

इस तरह की विद्रोह पूर्ण बातें करने पर श्रीकण्ठ ने कितनी ही बार अपने कई मित्रों को आड़े हाथों लिया था; परन्तु दुर्भाग्य से आज वही बातें अपने मुंह से कहनी पड़ीं! दूसरों को उपदेश देना भी कितना सहज है!

बेनीमाधवसिंह घबरा उठे और बोले—क्यों?

श्रीकण्ठ—इसलिए कि मुझे भी अपनी मान-प्रतिष्ठा का कुछ विचार है! आपके घर में अब अन्याय और हठ का प्रकोप हो रहा जिनको बड़ों का आदर सम्मान करना चाहिए, वह उनके सिर

चढ़ते हैं। मैं दूसरे का चाकर ठहरा, घर पर रहता नहीं, यहां मेरे पीछे स्त्रियों पर खड़ाऊँ और जूतों की बौछारें होती हैं। कड़ी बात तक कि चिन्ता नहीं, कोई एक की दो कह ले, यहां तक मैं सह सकता हूं, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात-घूसे पड़ें और मैं दम न मारूँ।

बेनीमाधवसिंह कुछ जवाब न दे सके। श्रीकंठ सदैव उनका आदर करते थे। उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़े ठाकुर अवाक् रह गए। केवल इतना ही बोले—बेटा, तुम बुद्धिमान् होकर ऐसी बातें करते हो; स्त्रियां इसी तरह घर का नाश कर देती हैं। उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं।

श्रीकण्ठ—इतना मैं जानता हूँ, आप के आशीर्वाद से ऐसा मूर्ख नहीं हूं। आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने-बुझाने से इसी गाँव में कई घर संभल गए, पर जिस स्त्री की मान-प्रतिष्ठा का मैं ईश्वर के दरबार में उत्तरदायी हूँ, उसके साथ ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है। आप सच मानिए, मेरे लिये यही कुछ कम नहीं है कि लाल बिहारी को दण्ड नहीं देता।

अब बेनीमाधवसिंह भी गरमाये। ऐसी बात और न सुन सके, बोले—लालबिहारी तुम्हारा भाई है, उस से जब कभी भूल-चूक हो कान पकड़ो। लेकिन—

श्रीकंठ—लालबिहारी को अब मैं अपना भाई नहीं समझता।

बेनीमाधवसिंह—स्त्री के पीछे?

श्रीकंठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेक के कारण!

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़के का क्रोध शान्त करना चाहते थे, लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लाल-बिहारी ने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीच में गाँव के और कई सज्जन हुक्के-चिलम के बहाने से वहां आ बैठे। कई स्त्रियों ने

जब यह सुना कि श्रीकण्ठ पत्नी के पीछे पिता से लड़ने पर तैयार हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षों की मधुर वाणियां सुनने के लिए उनकी आत्माएं तिलमिलाने लगीं। गाँव में ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे, जो इस कुल की नीति को पूर्ण गति पर मन ही-मन जलते थे। वे कहा करते थे, श्रीकण्ठ अपने बाप से दबता है, इसलिए वह दब्बू है, उसने इतनी विद्या पढ़ी, इसलिये वह किताबों का कीड़ा है। बेनीमाधवसिंह उसकी सलाह के बिना कोई काम नहीं करते, यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावों की शुभ कामनाएँ आज पूरी होती दिखाई दीं। कोई हुक्का पीने के बहाने और कोई लगान की रसीद दिखाने, आ आकर बैठ गए। बेनीमाधवसिंह पुराने आदमी थे, इन भावों को ताड़ गए। उन्होंने निश्चय किया कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, इन द्रोहियों को ताली बजाने का अवसर न दूँगा। तुरन्त कोमल शब्दों में बोले बेटा! मैं तुम्हारे से बाहर नहीं हूं। तुम्हारा जो जी चाहे करो, अब तो लड़के से अपराध हो गया।

इलाहाबाद का अनुभव-रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बात को न समझ सका। उसे डिबेटिंग क्लब में अपनी बात पर अड़ने की आदत थी, इन हथकण्डों की उसे क्या खबर! बाप ने जिस मतलब से बात पलटी थी, वह उसकी समझ में न आया। बोला—मैं लालबिहारी के साथ अब इस घर में नहीं रह सकता।

बेनीमाधव—बेटा बुद्धिमान् लोग मूर्खों की बात पर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई है, उसे तुम बड़े होकर क्षमा कर दो।

श्रीकण्ठ—उसकी इस दुष्टता को मैं कदापि नहीं सह सकता। या तो वही घर में रहेगा, या मैं ही रहूँगा। आपको यदि वह अधिक प्यारा है, तो मुझे विदा कीजिये, मैं अपना भार आप

सँभाल लूंगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं, तो उनसे कहिए, जहाँ चाहे चला जाए। बस, यह मेरा अन्तिम निश्चय है।

लालबिहारीसिंह दरवाजे की चौखट पर चुपचाप खड़ा बड़े भाई की बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस न हुआ था कि श्रीकण्ठ के सामने चारपाई पर बैठ जाय, हुक्का पी ले या पान खा ले। बाप का भी वह इतना मान न करता था। श्रीकण्ठ का भी उस पर हार्दिक स्नेह था। अपने होश में उन्होंने कभी उसे घुड़का भी न था। जब इलाहाबाद से आते, तो उसके लिए कोई-न-कोई वस्तु अवश्य लाते। मुग्दर की जोड़ी इन्होंने बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपने से ड्योढ़े जवान को नागपंचमी के दिन दंगल में पछाड़ दिया, तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़े में ही जाकर उसे गले लगा लिया था। पाँच रुपये के पैसे लुटाए थे। ऐसे भाई के मुंह से आज ऐसी हृदय विदारक बात सुनकर लालबिहारी को बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूट कर रोने लगा इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने किए पर आप पछता रहा था। भाई के आने से एक दिन पहले से ही उसकी छाती धड़कती थी कि देखूं भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सन्मुख कैसे जाऊंगा। उनसे कैसे बोलूंगा? मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेंगी? उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशा के विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयता की मूर्त्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था; परन्तु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकण्ठ उसे अकेले में बुलाकर दो-चार कड़ी बातें कह देते, इतना ही नहीं, दो-चार तमाचे भी लगा देते, तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता। पर भाई का यह कहना कि अब मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारी से न सहा गया। वह रोता हुआ घर में आया, कोठरी में आकर कपड़े पहने; आँखें पोंछी; जिससे

कोई यह न समझे कि रोता था। तब आनन्दी के द्वार पर आकर बोला—भाभी भैया ने निश्चय किया है वह मेरे साथ इस घर में न रहेंगे। वह अब मेरा मुंह नहीं देखना चाहते। इसलिये अब मैं जाता हूँ, उन्हें मुंह न दिखाऊंगा। मुझ से जो अपराध हुआ, उसे क्षमा करना।

यह कहते-कहते लालबिहारी का गला भर आया।

(४)

जिस समय लालबिहारीसिंह सिर झुकाये आनन्दी के द्वार पर खड़ा था, उसी समय श्रीकण्ठसिंह भी आँखें लाल किये बाहर से आये। भाई को खड़ा देखा, तो घृणा से आँखें फेर लीं और कतराकर निकल गये। मानों उसकी परछाईं से भी दूर भागते हैं।

आनन्दी ने लालबिहारी की शिकायत तो की था; लेकिन अब मन मे पछता रही थी। वह स्वभाव से ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मन में अपने पति पर झुंझला रही थी कि वह इतने गरम क्यों होते जाते हैं। उस पर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलने को कहें, तो कैसे क्या करूंगी? इसी बीच में जब उसने लालबिहारी को दरवाजे पर खड़ा यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझ से जो कुछ अपराध हुआ है, उसे क्षमा करना, तो उसका रहा-सहा क्रोध भी पानी हो गया। वह रोन लगी। मन का मैल धोने के लिए नयन-जल से उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकण्ठ को देखकर आनन्दी ने कहा—लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकण्ठ—तो मैं क्या करूँ?

आनन्दी—भीतर बुला लो। मेरी जीभ में आग लगे, मैंने कहां से यह झगड़ा उठाया।

श्रीकण्ठ—मैं न बुलाऊँगा।

आनन्दी—पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गई है, ऐसा न हो, कहीं चल दें।

श्रीकण्ठ न उठे। इतने में लालबिहारी ने फिर कहा—भाभी! भैया से मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुंह नहीं देखना चाहते, इसलिए मैं भी अपना मुंह उन्हें न दिखाऊंगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा, शीघ्रता से दरवाजे की ओर बढ़ा। अन्त में आनन्दी कमरे से निकली और उनका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारी ने पीछे फिर कर देखा और आंखों में आंसू भरे बोला—मुझे जाने दो।

आनन्दी—कहाँ जाते हो?

लालबिहारी—जहाँ कोई मेरा मुंह न देखे।

आनन्दी—मैं न जाने दूंगी।

लालबिहारी—मैं तुम लोगों के साथ रहने योग्य नहीं हूँ।

आनन्दी—तुम्हें मेरा सौगन्ध, अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालबिहारी—जब तक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैया का मन मेरी तरफ से साफ हो गया, तब तक मैं इस घर में कदापि न रहूँगा।

आनन्दी—मैं ईश्वर की साक्षी देकर कहती हूं कि तुम्हारी ओर से मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकण्ठ का हृदय पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारी को गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट-फूटकर रोये। लालबिहारी ने सिसकते हुए कहा—भैया! अब कभी मत कहियेगा कि तुम्हारा मुंह न देखूंगा। इसके सिवा आप जो दण्ड देंगे, वह मैं सहर्ष स्वीकार करूंगा।

श्रीकण्ठ ने कांपते हुए कहा—लल्लू! इन बातों को बिल्कुल भूल जाओ। ईश्वर चाहेगा, तो अब फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधवसिंह बाहर से आ रहे थे। दोनों भाइयों को गले मिलते

देखकर आनन्द से पुलकित हो गये, बोल उठे—बड़े घर की बेटियां ऐसी ही होती हैं, बिगड़ा हुआ काम बना लेती हैं।

गांव में जिसने यह वृत्तान्त सुना, उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता को सराहा—"बड़े घर की बेटियां ऐसी ही होती हैं।"

— ——

: ४ :

नई मां

काशी

अन्धकार गाढ़ा हो चला था—दाह-क्रिया से लौटे हुए देवव्रत चुपचाप कुर्सी पर लेटे हुए थे, चलचित्र की भाँति स्वप्न चल रहा था।

धवल कंगूरों से आवेष्टित विशाल अट्टालिका मौन-सी खड़ी रो रही थी, घर के कोने-कोने में सावित्री का अभाव खटक रहा था, अभी-अभी आठ घन्टे पहले वह दुनियां में इस घर में मौजूद थी, और इस वक्त उसकी आत्मा न जाने कहां होगी? उसके बनाये हुए झाड़-फानूस हिल-हिलकर रो रहे थे, दीवारों में भी एक शून्यता आ गई थी। बिजली का तीव्र प्रकाश भी गृहणी के अभाव में क्षीण हो गया है। उसका नन्हा सतीश कई घण्टे से रोता-रोता सो गया है।

देवव्रत ने अपनी उदास-सी दृष्टि बच्चे के ऊपर डाली—फिर अपने विचारों में विलीन हो गये। घर की एकाकिनी सावित्री ने क्यों उसका साथ छोड़ दिया। पर नहीं—उसकी इच्छा का मूल क्या था, जन्म के दिन से ही मौत निश्चित् है। फिर मनुष्य में इतना मोह क्यों? अगर सतीश न होता तो मैं संसार छोड़ देता, लेकिन सावित्री मेरे लिए एक बन्धन छोड़ गई है और वह अमर बन्धन तोड़े नहीं टूट सकता—विचार धारा चलती ही गई; आँख बन्द हो गईं। सारा दृश्य उन पलकों के भीतर सीमित हो गया।

सावित्री चौकी पर बैठी किताब पढ़ रही थी देवव्रत आकर खड़े हो गये, वह धीरे-धीरे मुस्करा पड़ी और किताब अलग रखते हुए बोली—बैठो! उसकी आवाज़ में कितनी स्निग्धता थी, कितना अपना पन था।

वसन्त वायु उसके वस्त्रों से अठखेलियाँ कर रही थी, खिड़की के पास वह पियानो बजा रही थी। देवव्रत ने सतीश को उसकी गोद में डाल दिया, सावित्री क्रोध से तनी, फिर मुस्करा पड़ी—उसके मुख पर कितनी दीप्ति थी।

आज भी सावित्री देवव्रत के पास आकर खड़ी हो गई। कुछ देर असमंजस में रही, फिर पति का कन्धा हिला कर जगा दिया और बोली—तुम इतने उदास हो देखो! मैं जीवित हूँ। तुम्हें और नन्हें को छोड़ कर कहां रह सकती हूं? ओह! ओह! तुम्हारा मुंह कितना उतर गया है और मेरा सतीश कितना रो चुका है—चलो तुम भी ज़रा-सी परिहास-परीक्षा में घबरा गये।' सावित्री ने अपने बर्फ जैसे हाथ से पति का हाथ कस कर पकड़ लिया। और अपने कमरे में लिवा ले गई।

ज़रा देर में पिता-पुत्र के रोते हुए चेहरे फिर खिल गये। तीन प्राणियों का नन्हा-सा परिवार फिर मुखरित हो उठा—

देवव्रत ने कुछ स्वस्थ होकर कहा—सावित्री! तुम बहुत रुला चुकी हो, अब एक गाना सुनाओ।'

इस्राज की छड़ी उसकी कमल-नाल-सी उंगलियों में शोभित हो गई।

'मन मूर्ख क्यों दीवाना है!' स्वर में कितनी सजीवता थी कितना दर्दनाक मर्म स्पर्शी गाना है।

देवव्रत ने आँखें खोल दीं घड़ी में बारह बज गये थे, सावित्री के कमरे से पियानो की आवाज आ रही थी, ओह इतनी रात को सावित्री को क्या सनक सवार हो गई? देवव्रत ने कमरे के दोनों दरवाजे बन्द कर दिए और पत्नी के कमरे की ओर चले।

बल्ब जल रहा था—महान् आश्चर्य से उनकी आँखें फैल गईं। कुर्सी पर खड़ा हुआ ३ वर्ष का सतीश पियोन पर मुट्ठियों से प्रहार कर रहा था—उफ्! तो क्या दृश्य भ्रम था? सावित्री सचमुच नहीं है। धीरे-धीरे उन्हें दोपहर की सारी घटना स्मरण हो गई।

देवव्रत ने बच्चे को गोद में उठा लिया और ऊपर के कमरे में चले गये। कुछ देर तक सतीश को टहलाते रहे, फिर उसे सुलाकर स्वयं सो गये।

निद्रादेवी ने इस बार दोनों को अपने स्नेहाञ्चल में छिपा लिया और थपकियाँ देने लगी।

❀ ❀ ❀ ❀

दिन घण्टों पर गुजरने लगे। कई सप्ताह बाद उस सूनी अट्टालिका में बहुत से आदमी भर गये—स्त्रियां थीं, बूढ़े बच्चे थे, युवतियां थीं और थे युवक। सरगर्मी से काम हो रहा था। दो महीने से जहां पिता-पुत्र अकेले थे। वहां इतने आदमी अचानक क्यों आये?

देवव्रत का विवाह था। सतीश की नई मां आ रही थी, जिसकी परिभाषा है 'सौतेली मां।' लेकिन इससे क्या? मां तो हो जायगी।

बाजे बज रहे थे, स्त्रियां मांगलिक गीत गा रही थीं। बहू आ रही है फूलों के पावड़े डाले गये और हिलती कांपती, वस्त्रों में लिपटी हुई पुष्पा अपने महावर-रंजित पावों से आँगन पार कर रही है—आँगन के एक कोने में नन्हा सतीश खड़ा होकर अपनी बड़ी आँखों से देख रहा है—माँ को!

दो महीने से जिसकी प्रतीक्षा में वह पागल हो उठा था, और विवश होकर देवव्रत ने अपने विवाह की स्वीकृति दी थी, उसी माँ को और उस अद्भुत दृश्य को बालक भयभीत होकर देख रहा था।

सुहाग मन्दिर के रस्म पूरे हो गये—देवव्रत बाहर चले आये। एक युवती ने सतीश को पुष्पा की गोद में डाल दिया और बोली—'भाभी, इसे जानती हो?'

पुष्पा जब तक बच्चे को संभाले, तब तक वह उठ कर भाग गया और पिता के पास जाकर बोला—ये मां नहीं है।

देवव्रत ने उसे छाती से लगा लिया हृदय के उद्गार अश्रुओं के रूप में प्रवाहित हो गये। आह! क्या सौतेली मां भी मां बन सकी है। एक घटना उन्हें स्मरण हो आई—एक दिन सावित्री ने कहा था—तुम चले जाते हो तो तबियत बहुत घबराती है!

तब 'उपाय क्या है' देवव्रत ने परिहास में कहा था।

सावित्री रहस्य पूर्ण हँसी हँसती हुई बोली—विवाह करलो, नई बहू मेरी सहेली हो जायगी।'

और सतीश को हँसाते हुए उसने कहा—'सुन तेरी नई मां आयेगी!'

तब सतीश को सावित्री प्रायः सिखा देती और वह अपनी तुतली बोली में कहता—'नई माँ कब आयेगी?'

जीवन का वह सुखद परिहास आज कठोर सत्य होकर दोनों के सामने आ गया और आज सतीश कह रहा है—'बाबू जी। ये मां नहीं है।'

उस दिन दोनों पिता-पुत्र जी भर कर रोये—बच्चा रोते-रोते सो गया।

× × × ×

दोपहर का सन्नाटा था—विवाह में थकी स्त्रियां, अपने-अपने बच्चों को लेकर कमरे में सो रही थीं।

पुष्पा अकेली एक कमरे में चुपचाप लेटी हुई है। कमरे में बहुत से आकर्षक चित्र हैं, कभी वह अपने माता पिता को याद करती है, और कभी अपने भविष्य की वस्तुओं पर दृष्टि डालती है—ये चीजें उनकी पहिली पत्नी के हाथ की रखी होंगी। कैसी सुन्दर रुचि थी! कमरे की प्रत्येक वस्तु इस प्रकार यथा-स्थान रखी गई है, जैसे कोई भी वस्तु हटाने से इस सुन्दरता का अंग टूट जायेगा—कई चित्र

हाथ के बनाये हैं। शीशे पर रङ्गीन स्पिरिट के फूल पत्तियां और पशु पक्षी अंकित हैं—कितना सफाई होगी उन हाथों में !

रेशमी परदा हट कर तीन वर्ष के एक बच्चे के आते ही वह सचेत हो गई।

बच्चा कुछ दूरी पर खड़ा हो गया और बोला—'नई मां !'

पुष्पा ने उठकर बच्चे को पकड़ लिया, इस बार वह भागा नहीं, चुपचाप विमाता की गोद में बैठ गया।

पुष्पा ने अवगुण्ठन हटा कर कहा —मैं तुम्हारी कौन हुं !

'नई माँ !' सतीश की आंखों में डर था, उसने सहम कर कहा।

पुष्पा ने उसके गुलाबी गालों पर उंगली रख कर कहा – 'नई मां ! नहीं, मैं तुम्हारी अम्मा हूं।'

'हां !'' सतीश ने पुष्पा को ध्यान से देखकर कहा।

पुष्पा ने उसे अंक में भरते हुए कहा—'तुम किसके पास रहते थे मुन्ना !

'मुन्ना ?' सतीश हंसकर बोला—'मेरा नाम सतीशचन्द्र है ?

पुष्पा पुष्प-सी खिल गई। बालक का उत्तर कितना मीठा, कितना भोला था।

पर्दे हिल उठे—पिता की छाया देखकर सतीश को याद आया—वह किताब लेने आया था। उसने चारों ओर आंखें घुमा कर देखा—

पुष्पा ने पूछा, 'क्या लोगे ?'

'बाजा।' सतीश ने मां के कन्धे पर सर रख कर कहा।

'वहां मां के कमरे में' सतीश ने उङ्गली के इशारे से बतलाया।

पुष्पा समझ गई—बच्चे को गोद में लेकर वह सावित्री के कमरे की ओर बढ़ी।

उसने कमरे का दरवाज़ा खोल डाला—गरम हवा किसी के साँस

की भांति आकर उसके शरीर में समा गई। उसने देखा—मेज पर जगह-जगह कई तरह के बाजे रक्खे हुए हैं, जिससे मालूम होता है कि उन्हें संगीत से विशेष रुचि थी। एक ओर दो साड़ियां अस्त-व्यस्त पड़ी हैं, जिसमें अधूरे गोटे टंके हैं, पलंग पर एक उजली चादर पड़ी है, जिसमें रङ्गीन रेशम के बड़े सुन्दर बेल-बूटे हुए हैं, लेकिन वह भी अधूरी है। पलङ्ग पर बिछी चादर सिकुड़ गई थी, पलङ्ग पोश की चुनावट कलापूर्ण है जिससे एक खूबसूरती आ गई है। पुष्पा ने कमरे की सब खिड़कियां खोल दीं। थोड़ी देर में कमरे की हवा साफ हो गई।

पुष्पा ने बच्चे को कुर्सी पर बैठाकर सफाई शुरू कर दी। उसने देखा दीवार से टंगी हुई सुनहरे फ्रेम की एक बहुत बड़ी तसवीर टंगी हुई है। एक युवक बैठा है—सिर्फ कुर्ता और धोती पहने और उसके कन्धे पर हाथ रक्खे गुलाबी साड़ी पहने हुए २३-२४ वर्ष की एक सुन्दरी युवती खड़ी है। डेढ़ साल का सतीश स्टूल पर खेल रहा है। तीनों के मुख पर खुशी थी, सुख की छापी थी।

पुष्पा ने प्रणाम कर मन ही मन मस्तक झुका दिया—

रात्रि आई। सतीश कहानी सुनती-सुनता सो गया था। पुष्पा कालीपन के फर्श पर बैठी हुई उसके बालों में उंगलियां उलझा रही थी, सान्ध्य चाँद की रोशनी जाली के रेशमी पर्दे से छन कर आ रही थी।

देवव्रत ने बटन दबाकर रोशनी कर दी और कमरे में पैर रखा! पुष्पा ने स्वागत किया और कहा, 'बैठिये।'

देवव्रत ने अकिंचन स्वर में कहा—तुम भी बैठो, कोई तकलीफ तो नहीं है।' पुष्पा अपनी जगह पर फिर बैठ गई।

देतव्रत ने फिर कहा: —

'पुष्पा तुम इस घर की लक्ष्मी हो! मैं तुम से एक भिक्षा मांगता हूँ।'

भिक्षा ! आप ऐसी बात क्यों करते हैं ? मैं मन-कर्म से आप की हूं ! आपकी आज्ञा...!'

'पुष्पे ! विवाह के बाद मिलता है स्त्रियों को पति का अमर प्रेम, और उस अपार प्रेम-सागर में दोनों एक दूसरे को पाकर सब कुछ भूल जाते हैं; लेकिन मेरे पास तो एकाकी प्रेम भी नहीं है। हां, मेरे पास सतीश है। आज प्रथम रात्रि का उपहार मैं तुम्हें उसी को देता हूँ।' देवव्रत की आवाज़ कांपने लगी।

'यह भिक्षा नहीं, यह तो दान है—लेकिन आपके देने के पूर्व ही सतीश मेरा हो चुका है। अब आप आशीर्वाद दें कि मैं एक सफल मां बन सकूं।'

× × × ×

सुख के पांच वर्ष बीत गये, पुष्पा पुष्प-सी खिली दिन रात सतीश की सेवा में मग्न रहती, उसका बाल क्रिड़ाएं देखकर और उसकी तुतली भाषा में 'नई मां' सुनकर पुष्पा स्नेह-विभोर हो जाती।

देवव्रत जिज्ञासु की भांति देखता कि इस स्नेह में कहां तक सत्यता है।

एक बार सतीश बीमार हो गया। उसका ज्वर बढ़ता गया, शरीर सूखने लगा आंखें धंसने लगीं। डेढ़ महीने उसका ज्वर अबाध गति पर रहा पुष्पा इन दिनों चौबीस घण्टे उसके पास रहती। धीरे-धीरे उसके जीवन से सभी निराश हो गये।

एक दिन डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया 'अब मृत्यु निश्चित है, अवस्था चिन्ताप्रद है।

पुष्पा ने कातर होकर कहा—नहीं नहीं, आप लोग और कोई उपाय करें, मेरे बच्चे को बचा लें।

डाक्टर बी० एन० मेहता ने चिंतित होकर कहा, 'एक उपाय है

ताजे रक्त का प्रयोग करने से कुछ आशा की जा सकती है ।' डा० मेहता एक सफल चिकित्सक थे ।

पुष्पा ने आगे बढ़ कर कहा—आप लोग मेरी अन्तिम श्वास तक रक्त लेकर प्रयोग करें ! मैं जिस खुशी से अपना रक्त दूंगी, निश्चय मेरा सतीश अच्छा हो जायगा ।

और आखिर पुष्पा के शरीर से रक्त लिया गया—जिस प्रकार बाबर ने हुमायूं का रोग अपने ऊपर लिया था, उसी प्रकार पुष्पा ने सतीश का रोग लेकर उसे मुक्त कर दिया—सतीश अच्छा होने लगा और पुष्पा कमजोर हो गई ।

दो सप्ताह बाद मालूम हुआ, पुष्पा न्यूमोनिया की शिकार हुई । अन्तिम सांस चल रही थी, उसने गला साफ कर तेज आवाज में कहा—स्वामी, आज तुम्हारा उपहार वापस करती हूँ, अब अपनी कोई सत्ता नहीं ।

और अन्तिम क्षण में सतीश उसकी गोद में रो रहा था, उसने उसे हृदय से लगाकर सान्त्वना दी—रोओ नहीं, फिर मिलूंगी !

× × × ×

आज पाँच वर्ष बाद फिर उस अट्टालिका में निस्तब्धता व्याप रही थी, पिता पुत्र बैठे थे, आकाश घिरा था, सावन की बदली चमकती हुई बिजली के साथ खेल रही थी, परन्तु इनके हृदय शून्य थे ।

محبت کی نہیں جاتی

محبت ہو ہی جاتی ہے

: ५ :

सपूत

(१)

विद्याधर अभी बारह वर्ष का ही था कि उसकी माता एक दिन बालक छोड़कर परलोक सिधार गई। वह सोचा करता, "न मेरा पिता और संतान की इच्छा करता, न मेरी माता मरती" वह दान-प्रिय और देवताओं का श्रद्धालु था। उर्दू के मौलवी ने ईर्ष्या के कारण उसे परीक्षा में कुछ अंक कम दिए, तो उसने हनुमान की पाँच पैसे की मिन्नत मानी कि मौलवी बदल जाए। एक मास के अन्दर ही स्कूल वालों ने मौलवी को हटा कर एक हिन्दू अध्यापक रख लिया। वह श्रेणी में द्वितीय निकला तो उसने प्रार्थना की "यदि मैं आगामी परीक्षा में प्रथम निकल आऊं तो सवा पांच आने दान करूंगा"। अगली परीक्षा में वह श्रेणी में प्रथम निकल आया। उसके सभी कार्य इसी प्रकार सिद्ध हो जाते। माता की मृत्यु के समय उसके पास कुल साढ़े छः रुपये थे। यह राशि उसने एक-एक पैसा करके जोड़ी थी। उसने सवा रुपए की हनुमान की मिन्नत मानी, सवा पाँच रुपए दान में देने की प्रतिज्ञा की, परन्तु उसकी माता के प्राण न बचे। वह चिन्तित और उदास रहने लगा।

विद्याधर कुछ विरक्त स्वभाव का था। पूजा पाठ सन्ध्यादि में मस्त रहता था। सत्सङ्गों में जाने से वह जगत् को मिथ्या समझने लग गया था। चलते-फिरते आदमियों को देख कर वह सोचा करता था "एक दिन सब को मर जाना है परन्तु ये बेचारे अपने साँसारिक धन्धों में फंसे हुए हैं।" एक दिन वह स्कूल से वापस आ रहा था, मार्ग में एक साधु मिल गया। साधु ने उस से कुछ माँगा। विद्याधर ने साधु की

ओर देखा। उसके प्रभाव से प्रभावित होकर उसने साधु को आठ पैसे दिए। विद्याधर के पास उस समय कुल इतने ही पैसे थे। यह १६१६ की घटना है, उस समय आठ पैसे आज कल के बारह आने के बराबर थे। विद्याधर ने इन आठ पैसों को पाँच सात दिनों में इकट्ठा किया होगा। साधु उन पैसों को लेकर बहुत प्रसन्न हुआ, और बोला, "बच्चा कोई इच्छा हो तो माँग ले' विद्याधर ने कहा, 'मेरी कोई इच्छा नहीं'। थोड़ी देर में साधु दृष्टि से ओझल हो गया। विद्याधर सोचने लगा, 'वह साधु मुझे वर देता था। क्या सचमुच उसमें इतनी शक्ति थी? क्या वह मेरी माँ को वापस बुला देता? क्या वह मुझे मैट्रिक में पंजाब में सर्व प्रथम रहने का वर देता।" इस साधु के फिर उसको दर्शन नहीं हुए। अब भी कभी कभी उसको ध्यान आ ही जाता है

(२)

विद्याधर का पिता केवलराम उस समय ३२ वर्ष का था। परिश्रमी जीवन, सुडौल शरीर, सुंदर आकृति, स्वास्थ्य बड़ा अच्छा। परन्तु वह एक छोटी सी दुकान का मालिक था, मासिक आय पैंतालीस चालीस रुपये होगी। उससे बड़ी कठिनता से निर्वाह हो सकता था। अतः किसी भी उच्च कुल वाले ने अपनी कन्या देना पसंद नहीं किया अपने से छोटे कुल में अथवा किसी विधवा के साथ, विवाह करवाना केवलराम को अभीष्ट न था। इससे उसकी प्रतिष्ठा कम होने का भय था। मित्रों में जब चर्चा चलती तो केवलराम कहता, 'मैं विवाह, करवाना नहीं चाहता, नई पत्नी मेरे बच्चों को तो पालने से रही उलटा जीवन दूभर हो जायगा। हाँ, विद्याधर की मासी मिल जाय तो काम ठीक हो सकता है। वह इन बच्चों पर जान देती है"।

विद्याधर की मासी का नाम भवानी था। उसका अभी विवाह नहीं हुआ था। उसको ये बच्चे प्राणों से भी अधिक प्यारे थे। बड़ी बहन की मृत्यु के पश्चात् उसने नवजात शिशु और विद्याधर की छोटी

बहन को वहीं बुलवा लिया था। दिन रात उनकी सेवा करती थी। रातें जाग-जाग कर उसने छोटे बच्चे को छः मास का किया। परन्तु बच्चा बीमार रहता था। अतः भवानी देवी को न दिन में विश्राम, न रात्रि में नींद। एक दिन बहुत तंग आकर उसके मुख से निकल गया "आप तो मरी थी, यह विपदा मेरे लिए छोड़ गई। इसे भी क्यों न ले गई"। वह कहती है, थोड़ी देर बाद मानों किसी ने झुंझला कर कहा' "बहन, मैंने उसे तेरे भरोसे छोड़ रखा था। जो तू ही तंग आ गई है, सो ले लिए लेती हूँ।" बच्चे की अवस्था बिगड़नी आरम्भ हुई और उसी रात को वह महा निद्रा की गोद में चला गया। भवानी देवी को अपने उन शब्दों का बड़ा खेद था। उसने किसी अनर्थ भावना से तो वह शब्द कहे ही नहीं थे। चिरकाल तक उसे उन शब्दों का भारी पश्चाताप रहा। वह कहती "मैं ही उस अभागे की मृत्यु का कारण बनी, न मैं ऐसे शब्द कहती, न वह मरता। मैंने छः महीने उसके साथ दिन रात एक कर दिया था। मेरा सब परिश्रम व्यर्थ, मेरी सब सेवा निष्फल···"। परन्तु अब पछताए क्या होत, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।

विद्याधर को छोटे भाई की मृत्यु का समाचार पहुँचा, तो उसे भारी दुःख हुआ। असार-संसार निस्सारता का एक और प्रमाण उसके कोमल हृदय पर अङ्कित हो गया। विद्याधर अपने पिता की विवाह सम्बन्धी चर्चा को सुनता रहता था, शनैः शनैः उसकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी हो गई थी, अब वह डेढ पौने दो सौ रुपये मासिक कमाने लगा था, परन्तु उसके सुसराल वालों को इसका ज्ञान न था। कुछ महीनों पश्चात् विद्याधर अपने ननिहाल गया तो भवानी देवी ने उसे पहिले से भी अधिक प्रेम किया। जब एक दिन भवानी देवी ने प्यार करते हुए कहा, 'वहां तो तुम्हें सूखी रोटियाँ मिलती होंगी। कुछ दिन और यहाँ रह ना'' तो विद्याधर ने उत्तर दिया, "मेरी यहाँ पढ़ाई को

हानि होती है, तुम्हीं वहाँ चलो चलो न"। भवानी देवी सुन कर चुप हो गई। वह चाहती थी कि उसका सम्बन्ध यहीं पर हो जावे परन्तु वह विवश थी। विद्याधर की मामी उसका पक्ष करती, अब वह पहले से भी अधिक प्रयत्नशील हो गई।

विद्याधर का नाना नहीं था, नानी थी। सम्बन्ध का निर्णय उसके मामा मूसलचन्द्र ने करना था। जब उसकी बड़ी बहन जीती थी तो वह केवलराम का अच्छा सत्कार करता, परन्तु अब उसकी श्रद्धा कुछ एक कारणों से कम हो गई थी। मूसलचन्द्र धनी आदमी था, केवलराम निर्धन। इस कारण से भी वह अपनी बहन भवानीदेवी का सम्बन्ध केवलराम से करने को तय्यार न था। विद्याधर ने बड़ी चातुरी के साथ अपने मामा के हृदय पर अङ्कित कर दिया कि उसके पिता की आय अब प्रायः दो सौ रुपये मासिक है। एक दिन बातों बातों में व्यङ्ग से उसने अपने मामा से कह ही दिया, "तुम्हें कौनसा हम पर तरस आना है?" सायं प्रातः वह गायत्रीमंत्र का जाप इस उद्देश्य से करता कि भवानीदेवी का विवाह उसके पिता से हो जावे। उसके पिता ने भी आकर्षण मंत्र आदि नाना उपायों का अनुष्ठान किया। भगवान् की कृपा हुई, सब मनोरथ सिद्ध हो गए और भवानी देवी का विवाह केवलराम से हो गया

(३)

भवानीदेवी पतिव्रता नारी थी। वह विद्याधर को हृदय से प्रेम करती थी। विवाह से पहले विद्याधर उसका नाम लेकर सम्बोधित करता था, अब उस को 'माता जी" कह कर पुकारने लगा। वह भी उसको तथा अपने पति को दूध पिलाती और स्वयं लस्सी पीकर निर्वाह करती। वह सबको अच्छे से अच्छा खाना खिलाती। केवलराम उसके इस प्रेम को देखकर अपने को धन्य मानता। विद्याधर भी माता पिता की सेवा में रत रहता। आदर्श परिवार का नमूना यहाँ मिल सकता था।

प्राचीन विचारों की हिन्दू नारी की सबसे प्रबल मनोकामना यह होती है कि वह अपने पुत्र का विवाह कर ले, बहू रानी का मुंह देखले। भवानीदेवी को भी विद्याधर के विवाह की चिन्ता हुई। उसके विवाह का जो कोई प्रस्ताव आता, उस पर वह सहर्ष विचार करती। विद्याधर अभी दशमी श्रेणी में पढ़ता था, उसकी आयु १५ वर्ष से कम थी। वह बाल-विवाह की हानियों को भली प्रकार समझता था। वह प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध करता, बात टूट जाती। एक प्रस्ताव आया, कन्या १८ वर्ष की, रूपवती, कुलीन, कुछ पढ़ी लिखी, घर के काम-काज में चतुर। कन्या के माता-पिता बहुत धनी थे। भवानी देवी ने कहा, "सब बातें अच्छी हैं, कन्या ज़रा बड़ी है, मामूली बात है और फिर सब गुण इकट्ठे मिल भी नहीं सकते। कोई न कोई दोष तो रहेगा ही। इससे अच्छी कन्या और कौन मिलेगी ?"। केवलराम सहमत हो गया। विद्याधर को पता चला तो उसने विरोध करना आरम्भ किया। दो दिन अनशन किया। उसके माता पिता को विवश होकर अपनी धुन छोड़नी पड़ी। बात टल गई।

जब विद्याधर ने पढ़ाई आरम्भ की, वह बराबर छात्रवृत्ति और पारितोषिक पाता रहा। मैट्रिक का परिणाम निकला तो वह अपने ज़िला में प्रथम तथा प्रान्त में पाँचवाँ निकला। विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति का वह अधिकारी हुआ उसी वर्ष उसी नगर में एक नये कालिज की स्थापना हुई। माता के प्रेम ने विद्याधर को लाहौर में जाने से रोक दिया। वह छात्रवृत्ति से वंचित रह गया क्यों कि नया कालिज अभी स्वीकृत नहीं हुआ था।

एफ० ए० में सर्व प्रथम रह कर विद्याधर लाहौर पहुंचा। बी० ए० और एम०ए० में भी वह सर्व प्रथम रहा। जब वह एफ०ए० में पढ़ता था तो उसके छोटे भाई प्रेमनिधि का जन्म हुआ। कहते हैं, माता अपने छोटे पुत्र को अधिक प्रेम करती है, परन्तु भवानी देवी

इसका अपवाद थी। कालेज में पढ़ते पढ़ते विद्याधर के विवाह के अनेक प्रस्ताव आए, परन्तु उसके माता पिता ने अब अनुरोध करना छोड़ दिया। एम० ए० में उत्तीर्ण होने के अनन्तर विद्याधर सरकारी नौकर हो गया और अपने वेतन का आधे से भी अधिक भाग घर भेजने लगा। घर की दशा बहुत जल्द सुधर गई। अब विद्याधर की आयु २४ वर्ष की हो चुकी थी। भवानी देवी ने फिर विवाह के लिए अनुरोध करना आरम्भ किया। विद्याधर ने कहा, "मैं २५ वर्ष से पहले विवाह नहीं कराऊंगा।" भवानी देवी ने कहा, 'मुकलावा होते-होते २५ वर्ष हो जावेंगे, आप प्रस्ताव को स्वीकार करें।" विद्याधर समझता था कि प्रस्ताव स्वीकार हुआ, तो विवाह रुकने का नहीं। उसने माताजी से कहा, "विवाह के बाद यह मासिक बचत आदि बन्द हो जावेगी।" भवानी देवी ने कहा, "मुझे स्वीकार है, तुम विवाह कर लो। मैं भी तो बहू रानी का सुख देख लूं।" केवलराम ने भी अब बहुत अनुरोध किया। अन्ततः विद्याधर को अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

(४)

विद्याधर का विवाह एक मान्य सेठ की सुशिक्षिता रूपवती कन्या सुकन्या से हो गया। विद्याधर दहेज लेने-देने का पक्षपाती न था, परन्तु माता पिता पुराने विचारों के थे। उनकी प्रसन्नता का विचार करते हुए उसे मौन रहना पड़ा। सुकन्या अपने साथ काफी धन लाई, परन्तु भवानी देवी को सन्तोष न हुआ। उसने एक दिन सुकन्या को सुना ही दिया, "तुम्हारे गांव के लोग लेना-देना नहीं जानते मैं अपने प्रेमनिधि का विवाह तो ऐसे नगर में करूंगी, जहां ले-दे कर दिल प्रसन्न हो जाए।" दूसरी बार सुकन्या अपने मैके गई तो सोने का सुन्दर हार बनवाकर ले गई। आशा थी, भवानी देवी उसे देख कर प्रसन्न होगी, पर उसका पारा पहले से भी अधिक चढ़ गया। "मर गए सोने का हार देने वाले। न आगे न पीछे। यह सब विद्याधर की कृपा है। उससे चोरी रुपये ले गई और अब अपने मैके का नाम चमकाने

लगी है। मुझे ऐसी बातें नहीं भातीं, यह तो कुल कलंकिनि है, कुल कलंकिनि ! जितनी ऊपर से गोरी है उतनी ही दिल की काली। यह तो हमारे घर को नष्ट करके रहेगी...।" भवानी देवी ने अपने पति को भर पेट भड़काया। ऐसी पतिव्रता नारी की बात को कौन अस्वीकार करता ? हरिणी पर भूखे सिंह की भांति झुंझला कर केवल राम ने कहा, "यह तो डायन है, डायन। हमारे कुल को खाकर रहेगी। फूट गये हमारे भाग्य जो इससे हमारा सम्बन्ध जुड़ गया। विद्याधर भी तो अब हमारे वश में नहीं रहा। मेरा पेश चले तो इसको घर से निकाल दूँ और उसका दूसरा ब्याह करदूं। हमारे परिवार में किसने दूसरा ब्याह नहीं किया। परन्तु विद्याधर तो इस गोरी चमड़ी पर ऐसा लट्टू हुआ कि कुछ सुनता ही नहीं। निकाल घर से, भेज नौकर के साथ उसी के पास।" सुकन्या ऐसी बातें सुनते-सुनते तंग आगई। सिसकते हुए उसने अपनी सास को कहा, "मैंने नौकर से तो ब्याह किया नहीं, जब वे स्वयं लेने आवेंगे तो चली जाऊंगी।"

प्रेमनिधि घर में यह सब कुछ देखता सुनता था, तब वह सातवीं श्रेणी में पढ़ता था और स्याना हो गया था। उसके कोमल हृदय पर भाई और भाभी के विरुद्ध संस्कार जमने आरम्भ हो गये। केवल राम ने प्रेमनिधि से विद्याधर को विस्तृत पत्र लिखवाया उसमें सुकन्या की करतूत को नमक मिर्च लगा कर वर्णन किया। विद्याधर को ऐसा पत्र प्राप्त करके अत्यन्त दुःख हुआ। उसने सुकन्या को मैके जाती हुई को एक पैसा भी नहीं दिया था, परन्तु वह इसका अपने माता पिता को विश्वास दिलाए तो कैसे ? वह तो कहते हैं, तुम पढ़े लिखे हो, सो ठीक। परन्तु तुम हमको चरा नहीं सकते। हमें भी ज़माने का अनुभव है। हम ने भी घाट-घाट का पानी पिया है। हमारे सामने तुम फिर भी बच्चे हो" उसने अपने पिता जी को पत्र लिखा :--

पूज्य पिता जी !

आपसे एक आवश्यक निवेदन है कि ऐसे पत्र आप प्रेमनिधि से

न लिखवाया करें। आप जो चाहें लिखें। परन्तु उसके दिल में यदि गांठ जम गई तो उसका दूर करना असम्भव हो जायेगा। इसका परिणाम हमारे कुल के लिये अच्छा न होगा। शेष बातें आकर करूंगा......

आपका प्रिय पुत्र,

....

दो चार दिन बाद उसने सुकन्या को पत्र लिखा। उसमें अपने पहुंचने की तिथि भी लिखी। भवानी देवी अपने विवाह से पूर्व केवलराम को गुप्त प्रेम पत्र लिखती रही थी, परन्तु वह भूतकाल की बात थी, उन बातों को तेरह चौदह वर्ष बीत चुके थे। इस पत्र को देखकर रोषान्वित होकर बोलीं, 'यह मेमों के चाले इस घर में कैसे ?' सुकन्या ने अपनी सास को बताया. 'उन्होंने फ़लां तिथि को आने को लिखा है।' उसने अपने को सिखाना आरम्भ किया, "अब हम उसके क्या लगते हैं ? बहू रानी को तो आने की सूचना दे दी, हमें वह भी नहीं। पढ़ा लिखाकर हमने इसे अपने हाथों से स्वयं खो दिया। प्रेमनिधि को तो अब हम बिना पढ़ा ही रखें।"

उक्त तिथि पर विद्याधर आ गया। आगे उस के स्वागत के लिए स्टेशन पर केवलराम स्वयं पहुंचता था नहीं तो प्रेमनिधि को अवश्य भेजता था, इस दफा कुछ भी नहीं। विद्याधर ने स्टेशन पर ही समझ लिया कि दाल में कुछ काला-काला है। नौ बजे रात्रि को गाड़ी स्टेशन पर पहुंची, साढ़े नौ बजे घर पर पहुंचा। कई आवाजें देने के बाद केवलराम ने द्वार खोला। विद्याधर ने सादर नमस्कार करते हुए पूछा, "स्वास्थ्य ठीक है ? आज तो बहुत ही आवाजें देनी पड़ीं।" केवलराम ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "सिर दुःखता था, यों ही आंख लग गई। प्रेम निधि भी आज जल्दी ही सो गया पर तुम ने तो अपने आने की सूचना भी नहीं दी।" "क्यों, प्रेमनिधि की भाभी ने घर में बताया नहीं ?" विद्याधर ने नम्रता से कहा।

केवलराम—"हां, बहूरानी को तो तुमने लिख दिया, पर हमारे

पत्र में उस का कोई संकेत नहीं था।"

विद्याधर—उस समय मुझे अपने कार्य-क्रम का स्वयं ज्ञान न, था, नहीं तो आप को आवश्यक लिखता। इसमें बात ही क्या थी।

केवलराम—और जब तुम्हें ज्ञान हुआ तो पत्रालय (डाक घर) में पोस्ट कार्ड समाप्त होगये, अथवा हम तीन पैसे के लिए भी मंहगे हो गये। जब पिता बनोगे तब समझोगे, पुत्र वात्सल्य क्या होता है। अभी तुम हमारी भावनाओं को क्या जानो।"

विद्याधर ऐसे कटाक्षों के लिए तैय्यार नहीं था। उसने तो अपनी ओर से सूचना भेजदी थी। उसने विश्वास दिलाया कि इस में तटस्थता अथवा आज्ञोल्लघन की कोई भावना न थी। उसने विनय पूर्वक निवेदन किया "इस बार अप क्षमा करें, आगे को मैं विशेष ध्यान रखूंगा।"

केवलराम, "नहीं, इस में तुम्हारा क्या दोष है? हमारे भाग्य में ही ऐसा लिखा था, तो हम भोग रहे हैं।"

बात टल गई। विद्याधर चार दिन की छुट्टी लेकर आया था। जितने दिन घर में रहा, कभी माता जी से और कभी पिता जी से सुकन्या की नई शिकायत सुनने को मिल जाती। एक दिन विद्याधर भोजन कर रहा था। उसकी बहन ने अपनी भाभी की थाली भी लगादी (परोस दी)। सुकन्या ने बहुतेरा कहा, "मैं ठहर के खाऊंगी" परन्तु ननंद की प्रेरणा बलवती हुई। उसने दूर बैठ कर उसी कमरे में खाना आरम्भ कर दिया। भवानी देवी अपनी सखी को मिलने गई हुई थी। उनके खाना खाते खाते वापस आगई, और दोनों को एक ही कमरे में एक ही समय खाना खाते देख-कर चकित होगई। "मैं तो पहले ही समझती थी। मेरा रहना इस घर में बहुरानी को भाता नहीं। अच्छा तुम आनन्द पूर्वक खाओ। मैं चली", यह कह कर वह जा, वह जा, वह तुरन्त घर से ही नहीं, गली से भी बाहर चली गई। सास के ऐसे कठोर शब्द सुन कर सुकन्या को भोजन का एक भी ग्रास निगलना

कठिन होगया। ननंद के अनुरोध से दो चार ग्रास और खाए तो सही, परन्तु क्रोध और शोक के आवेग में किए गए भोजन के विषैले प्रभाव से उसको तीव्र शिरोवेदना होगई।

तदनन्तर जब केवलराम भोजन करने आया तो भवानी देवी ने बहूरानी की नई करतूत भी अपने विशेष ढंग से उसके कर्ण-गोचर कर दी केवलराम को आधुनिक शिक्षा के विरुद्ध अपने विचार प्रकट करने का एक और अवसर मिला। उसने विद्याधर को डांटते हुए कहा, "कैसे निर्लज्ज हो गये हैं आज कल युवक !· यह पश्चिमीय शिक्षा तो हमारा सत्यानाश करके छोड़ेगी। बड़े-छोटे का कुछ भी तो विचार नहीं। और आश्चर्य तो यह है कि पूर्वी सभ्यता के पक्षपाती होते हुए तुम भी उसके प्रभाव से न बच सके। यह भी ध्यान न आया, छोटी बहन कुमारी है, हमारे इकट्ठा खाने से उसके कोमल विचारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?" विद्याधर ने उत्तर दिया, "हमने इकट्ठे कब खाया ? आपको यह सूचना ठीक नहीं मिली ! आप तो यों ही गरम हो जाते हैं।" केवलराम और भी तेज़ होकर बोला, मैं यों ही गरम हो जाता हूँ ! मुझे सूचना ठीक नहीं मिली ! आज अपनी मां को भी झूठी सिद्ध करने का यह नया साहस उत्पन्न हुआ। इकट्ठे नहीं खाया, तो क्या आगे पीछे खाया था। एक थाली में न सही, एक ही स्थान पर एक समय तो खाया था न। कल एक ही थाली में खाने लग जाओगे।" विद्याधर अवाक रह गया।

रात्रि को घर आया तो सुकन्या शिरोवेदना को लिए शय्या पर पड़ी थी। उसकी दुःख भरी करुण-कहानी को सुनने वाला सारे घर में एक विद्याधर था। न जाने उसने किन किन आशाओं को लेकर विवाह किया होगा ! ऐसे घृणित जीवन का उसे स्वप्न में भी ध्यान न था। जब वह कुमारी थी तो उसकी विवाहित सखियां उसे कहा करती थीं, "बहन, हंसी खुशी का जीवन तो तुम्हारा है ! विवाहित जीवन तो दुःख-मय है।" सुकन्या उनके कथन पर विश्वास न करती थी। वह कहती। "तुम भूल करती हो, जो ऐसा समझती हो। शास्त्रों का प्रमाण है, यह

कृष्णा को ५००) रुपये और दो सोने के आभूषण मुंह दिखाई में दिये भवानी देवी ने कृष्णा की ओर से भेंट को स्वीकार करते हुए कहा, तेरे पुत्र के विवाह में मैं ब्याज सहित दे दुंगी।"

सुकन्या एक सौ तोला सोना दहेज़ में लाई थी, कृष्णा केवल आठ। यही अनुपात वस्त्रों आदि अन्य वस्तुओं में था। परन्तु भवानी देवी बड़ी प्रसन्न थी, "इस महंगाई के युग में कोई इतना भी कर दे तो क्या कम है? जिसने कन्या ही दे दी, उसने बाक़ी क्या रख लिया?" केवलराम लड़की वालों की प्रशंसा करते न थकता था। "उन्होंने बरातियों की सेवा तो इतनी की कि कोई क्या करेगा। सब बराती वाह वाह करते थे।"

अगले दिन प्रेमनिधि सिनेमा देखने को गया तो कृष्णा को साथ ले गया। भवानी देवी ने केवल राम से कहा, 'बहू बड़ी आज्ञाकारिणी है। उसका तो दिल सिनेमा को नहीं करता था, परन्तु प्रेमनिधि का संकेत समझकर तुरन्त तैय्यार हो गई।" केवलराम भी बहू की प्रशसा सुनकर प्रसन्न हो गया।

प्रेमनिधि स्नान करने से पहले तेल की मालिश कृष्णा से करवाता था तो भवानी देवी प्रसन्न होती थी, "शहर वालियों की भांति कोमलाङ्गी नहीं है। दृढ़ता पूर्वक हाथ डालती है। थोड़े ही दिनों में प्रेमनिधि का स्वास्थ्य बना देगी। एक पाव घी के खाने से इतना लाभ नहीं होता, जितना कि एक तोला तेल की मालिश से।"

प्रेमनिधि का खाना अब कृष्णा ही बनाती है। भवानी देवी भी बड़ी प्रसन्न है। कहती है, "बहू काम चोर तो ज़रा नहीं। प्रत्येक काममें हाथ डालती है।"

प्रेमनिधि का मिठाई की गोलियों का कारखाना है। दोनों मिलकर गोलियों के पैकट बनाते हैं। प्रेमनिधि को कभी घर लौटने में देर हो जाती, तो भवानी देवी और कृष्णा छज्जे पर खड़े घण्टों उसकी प्रतीक्षा

करती रहती। प्रेमनिधि के मित्र उसे बुलाने आते तो कृष्णा स्वयं उनको उत्तर दे देती। भवानी देवी बहू की कार्य-कुशलता की प्रशंसा करते नहीं थकती, "बड़ी चतुर है। विश्राम करना तो जानती ही नहीं। घर के काम से निवृत होकर दूसरे काम में लग जाती है।' केवलराम भी कहता, "पूर्व-जन्म के शुभ कर्मों का फल समझो, नहीं तो ऐसी बहू कहां मिलती है?" घर में सब प्रकार का सुख आनन्द था। सुकन्या आती जाती जब यह हाल देखती सुनती तो दिल ही दिल में सोचती, 'यदि मेरी सगी सास जीवित होती, तो मैं भी कुछ दिन सुख के देख लेती।"

(६)

प्रेमनिधि राष्ट्रीय सेवा समिति का सदस्य बन गया। उसके साथी उसे बुलाने आते, तो आवाज़ देते, "प्रेमनिधि जी।" वह भी दूसरों को बुलाने जाता, तो उसी प्रकार आवाज़ देता "राममोहन जी, कृष्णचन्द्र जी, नरेशकुमार जी।" सेवा समिति की मुख्य शिक्षा यही है कि "प्राणिमात्र को अपना भाई समझो।" अतः वह प्रत्येक व्यक्ति को 'जी' कहकर बुलाते हैं। उनकी वाणी में एक विशेष प्रकार का आकर्षण, एक विशेष प्रकार का माधुर्य रहता है। कहते हैं नमक की खान में जाकर प्रत्येक वस्तु नमक बन जाती है। समिति के सदस्य पर समिति के सिद्धान्तों का प्रभाव न पड़े, यह असम्भव है। शीघ्र ही प्रेमनिधि को समिति में उत्तरदायित्व पूर्ण स्थान मिल गया, परन्तु वह चिन्तित रहने लगा। वह सोचता, "सगे भाई से मनो मालिन्य, दूसरों से प्रेम, यह कहां का सिद्धान्त हुआ? क्या यह ढोंग नहीं? जो अपने घर का सुधार नहीं कर सकता, वह जाति और देश का क्या सुधार करेगा?"

प्रेमनिधि नित्य प्रति रामायण का पाठ किया करता था। भवानी देवी पर भी प्रभु की विशेष कृपा थी। वह सदा प्रभु की भक्ति में लीन रहती। प्रत्येक रविवार को सत्सङ्ग लगाती। रामायण, गीता, विष्णु सहस्र नाम का पाठ होता। उसके घर में प्रभु चर्चा चलती ही रहता

थी। एक दिन उसने व्यङ्ग्य से प्रेमनिधि को कह दिया, "रामायण का पाठ तो नित्य प्रति करते हो कुछ समझते हो ?" प्रेमनिधि सोच में पड़ गया। शास्त्रों में भी लिखा है 'जो मनुष्य वेदों को पढ़ता है परन्तु उनके अर्थ को नहीं समझता, वह भार उठाने वाले कुली के समान है। सच्चा सुख और आनन्द तो उसी को मिलता है जो उनके तत्व को समझता।"

प्रेमनिधि ने रामायण की शिक्षाओं पर मनन करना आरम्भ किया कुछ दिनों के अन्तर अन्तर्ज्योति का प्रकाश हुआ। वह बैठा बैठा प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा। शायद महात्मा बुद्ध का ज्ञान की प्राप्ति पर तथा महर्षि पाणिनि को चौदह सूत्रों की खोज पर भी इतनी प्रसन्नता नहीं हुई होगी। वह दौड़ा दौड़ा माता के समीप गया और बोला,

"माता जी, समझ गया।"

माता बोली—"क्या समझ गये ?"

प्रेमनिधि—वही जो आपने पूछा था, अब मैं समझ गया।

माता—मैंने क्या पूछा था ? स्पष्ट क्यों नहीं कहते।

प्रेमनिधि—आपने पूछा था न कि रामायण से क्या समझे।

माता—(स्मरण करके) हां, तो फिर।

प्रेमनिधि—अब मैं रामायण की कुछ शिक्षा समझ गया।

माता—(प्रसन्नता से) हां तो फिर क्या समझे।

प्रेमनिधि—रामायण में लिखा है कि भरत ने अपनी सगी माता को छोड़ दिया था, परन्तु विमाता के पुत्र (सौतेले भाई) को नहीं छोड़ा।

माता—(स्तम्भित होकर) यह तुमने क्या कहा ? रामायण में तो अनेक उत्तमोत्तम शिक्षायें भरी पड़ी हैं।

प्रेमनिधि—ठीक है। नदी में जल अनन्त होता है परन्तु प्यासे के लिए एक लोटा भर पर्याप्त है।

भवानी देवी चकित हो कर सोच में पड़ गई।

(७)

गर्मी की छुट्टियां होने वाली थीं. विद्याधर सपरिवार काश्मीर जाने का कार्य क्रम बना रहा था! इतने में प्रेमनिधि का नम्रतापूर्वक निमन्त्रण पहुँचा, "गर्मी की छुट्टीयों में सीधे घर आने की कृपा करें।" विद्याधर ने धन्यवाद सहित उत्तर दिया, "तुम्हारी भाभी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उसे किसी पर्वतीय स्थान पर लेजाना आवश्यक है। तदनुसार काश्मीर का कार्य-क्रम बन चुका है।" जब पत्र व्यवहार से काम बनाने की आशा न देखी, तो वह स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। वहां पर बड़ी युक्ति से आग्रह-पूर्वक अनुनय विनय से भाभी जी को मना कर भाई जी से पहली ही छुट्टी में घर आने का वचन ले लिया, और बड़ी प्रसन्नता से घर लौटा। घर पहुंचते ही उसने माता जी को सूचना दी "माता जी! भाभी जी तथा भाई जी ने पहली ही छुट्टी में यहांपर पधारना स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मुझे पक्का वचन दे दिया है।"

माता जी—आ जाएं तो अच्छा ही है।

निश्चित तिथि पर प्रेमनिधि गाड़ी आने से एक घण्टा पूर्व ही स्टेशन पर स्वागत के लिए पहुंच गया और बड़े भाई के आने की इस प्रकार प्रतीक्षा करने लगा, मानो भरत राम की प्रतीक्षा कर रहा हो। एक एक क्षण एक एक घण्टे की भांति व्यतीत हो रहा था। इतने में पता चला कि गाड़ी दो घंटे विलम्ब से आएगी। प्रेमनिधि की व्याकुलता और भी बढ़ गई। दो घंटे दो मास की भान्ति व्यतीत हुए। गाड़ी का सिगनल हुआ, इंजन दीख पड़ा, तो प्राणों में प्राण आए। कुछ ही क्षणों के अनन्तर उस ने भाई जी का खिड़की से सिर बाहर निकले हु देखा। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। बड़े आदर पूर्वक तथा उत्साह के साथ उसने भाई जी तथा भाभी जी को बच्चों समेत गाड़ी से उतारा और घर ले आया।

घर पहुंचते ही भवानीदेवी ने उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया सुकन्या ने पहले ही दिन से अपनी सास के प्यार भरे सद्व्यवहार को अनुभव करना आरम्भ कर दिया। प्रेमनिधि नित्यप्रति विद्याधर की मालिश अपने हाथों से करता, और कृष्णा सुकन्या की। भवानी देवी उनके खाने का विशेष ध्यान रखती! दोनों को अपने सामने स्वयं बना कर भोजन खिलाती। प्रेमनिधि ने अपनी सेवा शुश्रूषा से भाई जी तथा भाभी जी को अपने वश में कर लिया। वे थोड़े ही दिनों के लिए आए थे परन्तु अब उनकी सारी छुट्टियां वहीं व्यतीत होने लगीं। सुकन्या का स्वास्थ्य भी बहुत सुधर गया। काश्मीर में इतना सुख उनको कभी नहीं मिल सकता था। एक दिन समय पाकर भवानी देवी सुकन्या को कहने लगी, "बहू रानी, मेरी बुद्धि पर न जाने क्यों पत्थर पड़ गए थे। आपके मैके लखपति ठहरे। वे तो एक नहीं, दस हार भी दे सकते थे। उनको क्या परवाह है ? क्षमा करो, मुझ पापिन से तुम्हारा बहुत अनिष्ट हुआ।" यह कहकर वह प्रायश्चित्त भरी आंखों से उसकी ओर देखने लगी। सुकन्या ने उत्तर दिया, "यह तो मेरे अपने पापों का परिणाम था। जब आपत्ति आनी होती है तो कोई न कोई कारण बन जाता है। मूर्ख भी जानता है कि सोने का हरिण असम्भव है। परन्तु जब सीता के दिन बुरे आए तो भगवान् राम की बुद्धि में भी भ्रम पड़ गया और वे मारीच को सोने का हरिण समझ कर उसके पीछे भाग पड़े। मुझे प्रसन्नता है कि हार के विषय में आपका सन्देह दूर हो गया।" और भी कई मीठी मीठी बातें हुई। सायंकाल जब केवलराम घर आया तो भवानी देवी ने अपने पति से कहा, "मैं तो इतने वर्ष भूल में ही रही। सुकन्या को हार तो उसके मैके वालों ने ही बनवा कर दिया था। उनके क्या परवाह थी ?" केवलराम ने कहा, "तुम जानो।"

अब तो वह अपने पति के पास दिन रात सुकन्या की प्रशंसा करने लगी। हर बात में वह उसे कृष्णा से अधिक बतलाती। सुकन्या ने भी घर के काम में पूरा सहयोग दिया और सास ससुर की दिल लगाकर

सेवा की। पहले सुकन्या को सास के पास एक एक दिन एक एक मास की भान्ति निकलता था, अब एक एक मास एक एक दिन की भान्ति निकलने लगा। तीन मास की छुट्टियां बीत गई, परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि अभी आए एक सप्ताह भी व्यतीत नहीं हुआ। चलते समय प्रेमनिधि अश्रु पूर्ण नेत्रों से पूछने लगा, "भाई जी, अब कब दर्शन दोगे?"

विद्याधर—जब भी तुम संकेत करोगे। अब मैं तुम्हारे वश में हूँ।

भवानी देवी—बहू रानी, शीघ्र दर्शन देना।

सुकन्या—अवश्य, आपके दर्शन करके मैं स्वयं कृतार्थ होऊंगी।

विद्याधर जी का घर पर आना जाना फिर पहले की भान्ति हो गया। उनके कुल का आदर्श-प्रेम एक कहावत बन गया अब वे स्वास्थ्य बनाने के लिए छुट्टियों में पर्वत-यात्रा नहीं करते, परञ्च अनेक काम छोड़कर भी सपरिवार घर पहुंचते हैं।

: ६ :

चट्टान से पूछ लो

लारी अड्डे पर आके रुकी और पहाड़ी कुली एक दूसरे को पीछे धकेलते हुए लारी की ओर लपके। तिलक ने नीचे उतर कर एक कुली से अपना बिस्तर और चमड़े का बक्स लारी की छत से नीचे उतरवाया। सोनमुख के अड्डे की दुकानें गिनती में बीस-पच्चीस से अधिक न थीं। बेतरतीब की दुकानें। इन्हें देख कर वह झुंझलाया कि क्या यही वह सोनमुख है जिसकी प्रशंसा गद्दियों के मुख से सुनी थी? यही गद्दी राजा की राजधानी थी! उसे याद था कि एक बार एक गद्दी ने अपनी एक कहावत का उल्लेख करते हुए कहा था—भगवान् मुझे अगले जन्म में भेड़ ही क्यों न बनाये पर धौलीधार में जन्म दे! धौलीधार की चोटियां अच्छी होंगी, उसने सोचा, मुझे भी वहां जाना चाहिए। पर उसके अचेतन मन में तो सोनमुख का चित्र गहरी रेखाओं द्वारा अंकित हो चुका था। वह अपनी कल्पना पर भी झुंझलाया। पर कुली का तो इसमें कुछ दोष नहीं, यह सोच कर उसने कहा—"महाराज की धर्मशाला किधर है?"

धर्मशाला पास ही थी। कुली ने धर्मशाला में पहुँचा कर दरबान से कहा—"एक कमरा खोल दो बाबूजी के लिए। बहुत दूर से आये हैं बाबूजी।"

दरबान ने कमरा खोल दिया। कुली के हाथ में एक चवन्नी थमाते हुए तिलक कहना चाहता था कि वह बहुत दूर से तो नहीं आया। बल्कि वह तो यह भी कह देना चाहता था कि वह तो पास के प्रदेश का रहने वाला है, जहां पहाड़ के पैर नज़र आते हैं, जहां गद्दी अपनी भेड़ों समेत आये साल उतर आते हैं, जाड़े भर वे वहीं रहते हैं और फिर

ऋतु बदलने पर ऊपर पहाड़ की ओर लौट जाते हैं।

"क्यों यहां कोई अच्छा मोची भी होगा?" उसने कुली से पूछ लिया।

"हां, है, बाबूजी!" कुली कह उठा।

"तो चलो मैं चलता हूँ," वह बोला, "मेरे बूट मरम्मत चाहते हैं।"

कमरे को ताला लगा कर वह कुली के साथ हो लिया और फिर लारी से अड्डे के समीप ही चला आया जहां खुमानी के वृक्ष के नीचे एक बुड्ढा मोची बैठा जूते गांठ रहा था। उसने हंस कर कहा—"लो बाबा, मेरे बूट भी ठीक कर दो।"

"धन्य भाग हमारे जो आप आये," बुड्ढे मोची ने तिलक को चौकी पर बिठाते हुए कहा, "आप इस पहाड़ी मोची का काम देख कर खुश न हो गये तो कहना।"

बुड्ढा मोची दूसरा काम छोड़ कर तिलक के बूट लेकर बैठ गया। उसके माथे की रेखाएं फैलती और सुकड़ती रहीं। तिलक उससे पूछना चाहता था कि यहां समय की गति इतनी सुस्त क्यों है। वह यह भी पूछना चाहता था कि क्या उसे इसकी भी कुछ खबर है कि देश से अंग्रेजी राज उठ गया और जनता का राज शुरू हो चुका है। दो सौ वर्षों की गुलामी का जुआ जन्मभूमि के कन्धों से उठ जाय, उसने सोचा, और इतनी बड़ी खबर पहाड़ के इस कोने में अभी तक न पहुँची हो, यह तो सचमुच बहुत बुरी बात होगी। उसे ख्याल आया कि यदि सोनमुख तक इतनी बड़ी खबर नहीं पहुंची तब धौलीधार के गद्दियों को भी अभी तक इस का कुछ पता नहीं चला होगा। खैर उन्हें तो जाड़ा शुरू होते ही, जिसमें अब बहुत दिन नहीं रह गये, जब वे नीचे उतरेंगे, इस का पता चल ही जायगा। उसे याद था कि जब गद्दी अपनी भेड़ों समेत नीचे उतरते थे तो उनकी भेड़ें कुछ इस प्रकार ममयाती थीं, जैसे कह रहीं हों—-हम तो बर्फ पड़ने पर भी पहाड़ पर ही रहें। पर

कोई हमारी सुनता ही नहीं। किन्तु ऋतु बदलने पर उनके ममयाने का अन्दाज़ भी बदल जाता था, जैसे कह रहीं हों—आखिर धौलीधार हमें बुलाना नहीं भूलता। गद्दीयों के शिकारी नसल के कुत्ते उनको भेड़ों की खूब रखवाली करते थे। पर पहाड़ को लौटते समय वे भी कुछ इस अन्दाज़ में भौंकते, जैसे कह रहे हों—हमारे ऊपर न जाने कितनी बरफें पिघल चुकी होंगी।

खुमानी के वृक्ष से हट कर सामने एक चट्टान नजर आ रही थी। बुड्ढे मोची से पूछने पर पता चला कि कोई इसे इन्द्र की चट्टान कहता है तो कोई कहता है कि यह तो अर्जुन की चट्टान है। गद्दी लोग इस चट्टान को पूजने आये थे। क्या मजाल वे इधर से गुजरें और चट्टान को नमस्कार न करें। नीचे जाते समय वे विशेष रूप से इस पर फूल चढ़ाते थे जिन्हें वह ऊपर से चुन कर लाते थे। उस समय वह चट्टान बहुत सुन्दर लगती थी। चट्टान से सटे हुए पुरानी राजधानी के खण्डहर थे। राजधानी यहाँ से उठ गई थी। पर महाराज अपने श्रद्धा के फूल लेकर बसन्त पंचमी के दिन उस चट्टान से वर मांगने आया करते थे। यद्यपि अब महाराज अपने राज पुरोहित को ही भेज छोड़ते थे। जाने क्या सोच कर वह कह उठा—

'चट्टान सब देखती है पर वह खामोश रहती है!"

"तो क्या चट्टान की भी आँखें होती हैं, बाबूजी!" बुड्ढा मोची कह उठा, "क्या चट्टान का भी मुख होता है!"

तिलक ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखें सड़क की ओर घूम गईं जो ऊपर की ओर जाती थी। फिर उसे ख्याल आया कि लारी पहाड़ी जनता के जीवन में रच रही है। जो लोग पहले बीस-बीस कोस पैदल चलने के आदी थे, अब दो-दो चार-चार कोस की खातिर भी सड़क पर खड़े-खड़े दो-दो तीन-तीन घण्टे तक लारी की प्रतीक्षा किया करते हैं। समय यों भी नष्ट होता था और यों भी नष्ट होता है, वह कहना चाहता था, विज्ञान ने मानव के लिए अपनी सेवाएँ

अर्पित की हैं पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण अभी तक लोग विज्ञान से पूरा-पूरा लाभ उठाने योग्य नहीं हो सके।

इतने में नीचे से एक और लारी आकर अड्डे पर रुकी जिससे तीन चार अंग्रेज और दो अंग्रेज छोरियां उतरीं। बुड्ढे मोची ने तिलक का काम छोड़ कर पूछा—"साहब कोई खिदमत ?"

एक अंग्रेज बोला—"अमारा वाला बूट सब ठीक हाय। अम मरम्मट नहीं मांगटा।"

दोनों अंग्रेज छोरियां खिलखिला कर हँस पड़ीं। वे लोग कुलियों से सामान उठवाकर डाक बंगले की ओर चल पड़े।

बुड्ढे मोची ने फिर से तिलक का काम शुरू करते हुए कुछ-कुछ खिसयाना-सा होकर कहा—"सारे फिरंगी काम नहीं करवाते। पर जो करवाते हैं काम के बहुत पैसे देते हैं, बाबूजी।"

तिलक को बुड्ढे मोची की अवस्था पर दया आगई। इस दया से कहीं अधिक उसे इन अंग्रेज यात्रियों पर क्रोध आया। ये लोग दो सौ वर्षों से इस देश पर राज्य करते आ रहे थे, पर उन्होंने इस देश की भाषा को ढंग से सीखने का कभी यत्न नहीं किया था। हाँ, अपनी भाषा उन्होंने इस देश के लोगों के दिमागों में कूट-कूट कर भर दी है जिसे निकालना अब कठिन हो रहा है।

बुड्ढे मोची ने आंखें झपकाते हुए कहा—एक बात बताओगे, बाबूजी ?"

"पूछो।"

"आप ने तो गांधी बाबा को देखा होगा ?"

"गांधी बाबा को देखा भी है और उनसे बातें भी की हैं।"

बुड्ढे मोची ने आश्चर्य से तिलक की ओर देखा जैसे उसे सच न आ रहा हो। यदि उसने केवल यही कहा होता कि उसने गांधी बाबा को देखा है तो शायद उसे विश्वास आ जाता। उसने फिर कहा—"आज कल गांधी बाबा कहाँ हैं ?"

"देश की राजधानी में, तिलक ने उड़ने वाले पक्षी की भांति बाहें हवा में उछालते हुए कहा ।

बुड्ढे मोची ने फिर कहा—"गांधी बाबा सोनमुख कब आयेंगे ? इधर तो गांधी बाबा एक बार भी नहीं आये ।"

तिलक को इस पर स्वयं आश्चर्य हुआ । बोला, 'न जाने सोनमुख उनसे कैसे छूट गया । वे तो देश के कोने-कोने में गये हैं । क्या मैदान, क्या पहाड़, गांधी बाबा ने इस देश की धरती को अपनी आंखों से देखा है, और पैरों से नापा है । सब स्थानों पर वह एक ही संदेश लेकर गये—एक हो जाओ !"

बुड्ढे मोची ने हँस कर कहा—"सोनमुख की चट्टान भी गांधी बाबा की बाट जोह रही है ।"

तिलक कह उठा—"चट्टान से कह दो कि वह निराश न हो । गांधी बाबा एक दिन यहाँ अवश्य आयेंगे । अब मैं उनके दर्शनों को जाऊँगा तो उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे सोनमुख का यात्रा अवश्य करें ।"

बुड्ढे मोची के माथे की रेखाएं और भी गहरी होती नज़र आईं, जैसे उसे तिलक की बातों पर विश्वास न आ रहा हो, फिर न जाने क्या सोच कर वह कह उठा—"क्यों यह सच है बाबूजी, कि जब भी फिरंगी ने गांधी बाबा को जेल में डाला, गांधी बाबा अपनी शक्ति से जेल की दीवारों से निकल कर अपने भक्तों का साहस बढ़ाने के लिए उन्हें दर्शन देने आ जाते थे और फिर खुद ही जेल में चले जाते थे ?"

तिलक के जी में तो आया कि साफ-साफ कह दें कि ये सब कहने की बातें हैं और इनमें सचाई नाम की कोई चीज़ नहीं । पर बुड्ढे मोची का मन रखना भी तो अत्यन्त आवश्यक था । बोला—"गांधी बाबा की शक्ति अपरम्पार है । जब वे सोनमुख आयेंगे तो तुम खुद देख लोगे । सोनमुख की चट्टान से यदि वे कहेंगे कि चलो, तो तुम देख लोगे कि चट्टान सरकने लगेगी । यदि वे ऊंची-ऊंची चोटियों की

बरफों से कहेंगे कि पिघलो तो बरफें सचमुच पिघलने लगेंगी। और यदि कहीं उन्होंने बरफों से कह दिया कि मत पिघलो तो बरफें कभी नहीं पिघलेंगी।"

बुड्ढे मोची की आंखें चमक उठीं। बोला—"गांधी बाबा को सोनमुख तो आना ही चाहिये।"

तिलक ने कहा—"शायद तुम नहीं जानते बाबा कि देश में फिरंगी का राज खत्म हो गया।"

"सुनते तो हैं बाबूजी", बुड्ढे मोची ने सूई में डोरा डालते हुए कहा, "पर सच पूछो तो हमें सच नहीं आता। क्यों यह सच है, बाबूजी?"

"यह तो सोलह आने सच है बाबा!"

"फिरंगी ने कैसे मान लिया बाबूजी कि वह चला जायगा?"

"चला जायगा मत कहो, बाबा, फिरंगी तो समझो अब चला गया।"

बुड्ढे मोची ने हँसकर कहा—"इसमें भी फिरंगी की कोई चाल न हो, बाबूजी!"

"गांधी बाबा ने सब देख-भाल कर ली है" तिलक ने उछल कर कहा, "बात यह हुई कि गांधी बाबा की शक्ति से करोड़ों हाथों वाली और करोड़ों मुखों वाली जनता जब तनकर खड़ी हो गई तो फिरंगी डर गया। उसने गांधी बाबा को बुलाकर कहा—'पहले तुम मुझे कहते थे कि मैं तुम्हारा देश छोड़कर चला जाऊँ। अब मैं खुद कहता हूँ कि तुम्हारे देश में मैं नहीं रह सकता।"

"फिर क्या हुआ?"

"बस गांधी बाबा ने कहा—मुझे स्वीकार है। तुम अपने जाने की तिथि निश्चित कर लो। फिरंगी ने अपने जाने की तिथि निश्चित कर ली। पर वह तिथि आने से पहले ही फिरंगी ने गांधी बाबा को फिर अपने महल में बुलाया और कहा कि क्यों न वह निश्चित तिथि से पहले

ही चला जाय। गांधी बाबा बोले—जरूर चले जाओ। इससे हमारी तुम्हारी मित्रता भी पक्की हो जायगी। बस फिरंगी चला गया और अब जन्म-भूमि पर जनता का राज है।"

बुड्ढे मोची के माथे की रेखाएँ फिर से फैलती और सुकड़ती नज़र आई। अपने अन्तिम वाक्य पर वह फिर से विचार करने लगा—अब जन्मभूमि पर जनता का राज है। क्या जनता सचमुच अपनी शक्तियों को पहचान पाई है?

बुड्ढा मोची कह उठा—"गांधी बाबा सोनमुख आयें तो मैं अगरोला से कहूँ कि उन्हें बांसुरी सुनाये।"

"कौन अगरोला?"

"वही कुली जो आपका सामान धर्मशाला तक ले गया था और आपको मेरे पास लाया था।"

इतने में अगरोला उधर आ निकला। तिलक ने एक परिचित मित्र के स्वर में पूछा—"बांसुरी सुनाओ, अगरोला?"

अगरोला ने हँस कर कहा—"मेरी बांसुरी हमेशा नहीं बोलती बाबूजी!"

बूट की मरम्मत खत्म हो चुकी थी। तिलक ने एक अठन्नी उसके हाथ में थमा दी। पर बाबा ने अठन्नी लौटाते हुए कहा—"आपका दिया हुआ बहुत कुछ है, बाबूजी! मैं चाहता हूँ गांधी बाबा भी तीसरी लारी से यहाँ आ पहुंचें और आज मुझे उनके जूते की मरम्मत का पुण्य मिल जाय।"

सोनमुख के अड्डे पर कोई विशेष रौनक न थी। जब कोई लारी यहाँ पहुंचती तो यों लगता जैसे किसी ने टिके हुए जल में कंकर फेंक दिया हो। जैसे जल पर छोटे बड़े गोल घेरे पैदा हो जाते हैं और फिर गायब हो जाते हैं, कुछ यही हाल सोनमुख के अड्डे का था। चारों ओर सुन्दरता थी। पर यहाँ की दुकानें सिरे से कुरूप थीं। चारों ओर जागरण था, पर यहाँ ऊँघ थी। दुकानों पर जैसे कोई ग्राहक न

आता हो दुकानदार बेपरवाही से बैठे रहते। जैसे उन्हें किसी ग्राहक की प्रतीक्षा हो न हो। दूर खेतों में किसान अपने कार्य में मगन नज़र आते। सोनमुख ग्राम की स्त्रियां भी अपने-अपने घर के धन्धे में उलझी रहतीं। पर सोनमुख के अड्डे दुकानदार बिलकुल बेकार नज़र आते। तिलक चाहता था कि कोई इन दूकानदारों को झंझोड़ कर इस नींद से जगाये और फिर उनसे पूछे—तुम्हारा दिमाग तो ठीक है ना! चारों ओर हँसी और मुसकान थी। पर यहाँ के दुकानदारों को देखकर यों लगता जैसे उन्हें कभी हँसी आ ही न सकती हो।

धर्मशाला के सामने एक ढाबा था जहाँ उसने भोजन का प्रबन्ध कर लिया था। दिन के समय वह इधर-उधर सैर को निकल जाता और सवेरे और सांझ को धर्मशाला के कमरे में बैठे रहने की बजाय वह लारी के अड्डे पर खुमानी वृक्ष के नीचे उस बुड्डे मोची के पास जा बैठता। इस घाटी की सिलवटों और चट्टानों में गूँजता हुआ बांसुरी का गान उसे सबसे ज्यादा पसन्द आया। इस गान में पहाड़ था और मैदान का फैलाव, और इसकी सबसे बड़ी विशेषता था यही गूँज पैदा करने की शक्ति। कभी यह गान नटखट, चंचल और एकदम स्वतन्त्र नज़र आता, तो कभी एकदम उदासी में डूबा हुआ। रात को धर्मशाला के कमरे में सोते-सोते उसकी आँख खुल जाती। कहीं दूर से बाँसुरी का गान गूँज उठता। कौन है जो इस समय बाँसुरी बजा रहा है, यह पूछना चाहता। बाँसुरी के गान में ये सुगन्धियाँ कहां से लहरा उठती हैं? ये परछाइयां, ये गूंज क्या कहना चाहती है? बांसुरी का गान किसे बुला रहा है? उसे यों लगता कि बांसुरी की आवाज में एक विमुख आवाज है। शायद यह सोनमुख की उस चट्टान की आवाज थी जो अपने स्थान से टस से मस नहीं होती थी। बांसुरी की वेदना सचमुच किसी निर्माण की वेदना थी—नये जीवन को जन्म देने की वेदना—नया जीवन जो इतिहास में नये अध्याय की वृद्धि कर

सके। फिर वह बाँसुरी का गान एकदम लोरी के स्वरों में ढल जाता और मीठी-मीठी थपकियां देने लगता और धीरे-धीरे वह निद्रा-धारा मे बह जाता।

दिन के समय वह घूमने निकलता तो यों लगता कि चारों ओर से सृष्टि उसे बुला रही है। इसे यों लगता कि जब से यह धरती बनी है और इसे प्यारी-प्यारी, गरम-गरम धूप प्राप्त हुई है, यह किसी की बाट जोह रही है। यों भी होता कि वह सोनमुख के अड्डे से बहुत दूर निकल आया है और झट उसके पैर रुक जाते। वह पीछे की ओर लौट पड़ता। जैसे चट्टान उसे बुला रही हो। पर चट्टान के समीप पहुँचकर वह इसके गिर्द घूम-घूम कर इसका एक-एक कोना बड़े ध्यान से देखता और अपने दिमाग से पूछता—यह चट्टान क्या कह रही है ? फिर वह सोचता कि यह चट्टान कुछ नहीं कह सकती। यह तो बस इसी प्रकार एक रहस्यमय खामोशी में गुम खड़ी रहेगी। कभी उसे यों लगता कि चट्टान की एक-एक सिलवट पर हलकी सूक्ष्म-सी मुसकान फैल गई है।

किसी-किसी दिन धुन्ध में लिपटी हुई चट्टान ऊंघती नज़र आती। चट्टान से कुछ दूर एक झरना था। त्रिल रिल त्रिल रिल झरने का पानी एक मधुर गान छेड़ता हुआ एक नन्हे से कूल के रूप में बह रहा था। कभी-कभी तिलक इस झरने के किनारे चला जाता। जैसे वह उस झरने से पूछना चाहता हो कि भाई मेरे, तुम ही बताओ इस चट्टान का भेद। कहीं से कोई पक्षी चहचहा उड़ता और तिलक मानो इस पंछी से भी पूछना चाहता—अरे मित्र, तुम ही बताओ इस चट्टान के बारे में। वह ऊपर नीचे फैले हुए खेतों से भी पूछना चाहता था कि क्या तुमने कभी इस चट्टान को कुछ कहते नहीं सुना। वे दिन कैसे थे जब यहां गद्दी राजा का राज्य था ? इस चट्टान ने गद्दी राजा का राज खत्म होते देखा। शायद वह इसी वेदना में आजतक खामोश है।

कभी वह पुरानी राजधानी के खण्डहरों की परिक्रमा करने लगता

और उससे पूछता कि कुछ तुम ही बताओ सोनमुख की चट्टान का भेद। फिर वह सूर्य से पछता—तुम ही बताओ, सूर्य भगवान्! तुम से क्या छुपा हुआ है?

एक दिन वह दोपहर ढलने पर बुड्ढे मोची के पास आया। बोला—"कहाँ है तुम्हारा अगरोला, बाबा? उसको कहो आज अपनी बांसुरी ही सुनाये।"

"क्यों उसने आजतक हमारे बाबूजी को बांसुरी नहीं सुनाई?" बुड्ढे मोची ने चकित होकर कहा।

तिलक कह उठा—"जब टिकी हुई रात के मौन को चीरती हुई बांसुरी गूंज उठती है उस समय भला कौन सो सकता है? यों लगता है जैसे बांसुरी का गान भी कोई जुगनू है जो रात के अंधेरे ही में चमकता है।"

बुड्ढे मोची ने हंस कर कहा—"अकेला अगरोला तीन कुलियों जितना काम करता है, बाबूजी! वह तो थक कर सो जाता होगा। अब कैसे पता चलायें कि यह कौन है जिस की बांसुरी आधी रात के समय हमारे बाबू जी को सोते से जगा देती है।"

मैंने गद्दियों की बांसुरी भी सुनी है। उसमें भी यह दर्द नहीं होता जो उस बांसुरी में होता है जो मैं आधी रात के समय सुनता हूँ, बाबा!"

"एक का दर्द दूसरे का दर्द बन जाय, बाबू जी, यह बांसुरी तो चाहती है।"

एक का दर्द दूसरे का दर्द बन जाय, ये शब्द तिलक के मर्मस्थल को छू गये। बोला—"यही तो गांधी बाबा भी कहते हैं। एक को छोड़ कर दूसरे का आग बढ़ना आगे बढ़ना नहीं कहला सकता—गांधी बाबा के इस वचन का भी तो यही अर्थ है।"

बुड्ढे मोची के माथे की रेखाएं फैलती और सकुड़ती नजर आईं। जैसे वह पूछना चाहता हो कि ऐसे हमारे गांधी बाबा क्या सोनमुख के

इस मोचा के घर उसी तरह दर्शन नहीं देंगे जैसे विदुर के घर भगवान् कृष्ण आये थे।

अचानक सामने भीड़ देख कर बुड्ढा मोची कह उठा—"शायद कोई झगड़ा हो गया हो।"

वह अपनी जगह से उठ कर उधर को लपका। तिलक भी उसके साथ जा खड़ा हुआ। बीच में एक व्यक्ति खड़ा था जिसके कंधों पर लम्बे-लम्बे बाल झुके पड़ते थे। उसे पहचानते हुए बुड्ढे मोची ने तिलक के कान में कहा—"शम्भु है। एक गद्दी का छोरा।"

"पर भेड़ के बिना तो मैं गद्दी के छोरे की कल्पना नहीं करना चाहता। न इसके हाथ में बांसुरी ही नजर आता है," तिलक ने गंभीर होकर कहा।

"शम्भु को कोई सेठ नीचे ले गया था और पढ़ा लिखाकर कई बरसों बाद सेठ ने उसे ऊपर भेजा था।"

"कब की बात है?"

"आठ बरस पहले की बात है, बाबू जी!"

"तो आठ बरस से शम्भु क्या कर रहा है?"

"शम्भु ने मुझे खुद बताया था कि उसने मूर्ति बनाने की विद्या सीख ली है। मैंने कहा—छोटी-मोटी मूर्तियां बनाओ, शम्भु, गुजारा चल जायगा। एक छोटी-सी मूर्ति उसने बनाई भी थी।"

"वह मूर्ति अब कहां है, बाबा?"

"उसे तो जाने कौन उठा ले गया। शम्भु का बड़ा हथौड़ा और बड़ी छेनी अभी तक मेरे पास पड़ी है जो मैं उसे लौटाना चाहता हूँ। उसकी छोटी हथौड़ियां और छोटी छेनियां उसने न जाने कहां पटक दी थीं। उसने कहा था कि वह एक पूरे कद की मूर्ति गढ़ना चाहता है। फिर उसने कोई भी मूर्ति बनाने की बात छोड़ कर स्वराज का प्रचार शुरू कर दिया और इस पर महाराज ने उसे सजा सुना दी।"

"कै बरसों की, बाबा?"

"दस बरस की और यह तो हमारे महाराज न दया की जो उसे तीन बरस पहले ही छोड़ दिया।"

हर कोई शम्भु से कुछ पूछना चाहता था पर शम्भु कुछ बोलता ही नहीं था। उसके मुख पर किसी दृढ़-संकल्प की रेखाएं स्पष्ट हो उठी थीं। तिलक ने मन ही मन में शम्भु को प्रणाम किया। वह कहना चाहता था कि शम्भु को साधारण आदमी मत समझो।

भीड़ हट गई! शम्भु वहीं एक शिला पर गुम-सुम बैठा रहा। बुड्ढे मोची ने उसे कई बार बुलाने का यत्न किया। पर शम्भु टस से मस न हुआ। फिर जब तिलक ने एक दूकान से दूध मंगवा कर ग्लास शम्भु के हाथ में थमाया तो उसने खुशी से दूध पी लिया। पर तिलक के बुलाने पर भी शम्भु चुप बैठा रहा। जैसे उसने मौन व्रत धारण कर रखा हो।

बुड्ढे मोची का दिल शम्भु को देख कर खुशी से उछल पड़ा था। सात बरस की क़ैद में उसने कितने कष्ट सहे होंगे, इसका ध्यान आते ही उसका सिर गर्व से ऊंचा उठ गया। खुमानी के वृक्ष के नीचे बैठा वह एक जूते की मरम्मत कर रहा था। पर उसका ध्यान तो शम्भु में था। तिलक को पास आते देख कर वह बोला—"शम्भु केवल अपने लिये ही क़ैद नहीं हुआ था, बाबू जी! यह बात तो आप भी मानेंगे।"

"हां, हां! मेरे दिल में ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिये बहुत आदर है, बाबा! तुमने बताया था ना कि बांसुरी कहती है—एक का दर्द दूसरे का दर्द बन जाय। मैं कहता हूँ कि शम्भु ने बांसुरी का गान सुन कर ही स्वराज्य की बात उठाई होगी।"

शम्भु के लिये धर्मशाला में एक कमरा खुलवा दिया गया। जिस ढाबे में तिलक ने अपने लिये भोजन का प्रबन्ध कर रखा था वहीं उसने शम्भु के लिये भी प्रबन्ध करा दिया। बुड्ढे मोची ने शम्भु की अमानत वह बड़ा हथौड़ा और बड़ी छेनी शम्भु के हवाले कर दी।

दूसरे दिन सूर्य निकलने से पहले ही शम्भु हथौड़ा और छेनी ले चट्टान के पास जा पहुँचा। उसके दिमाग में कोई मूर्ति करवट बदल रही थी। सूर्य की पहली किरणें चट्टान के पथरीले शरीर पर सोने का पानी फेर रही थीं। चट्टान अपनी पुरातन शान से सिर उठाये खड़ी थी। जैसे वह अपनी मूक वाणी द्वारा पुकार कर कहना चाहती हो—खबरदार जो मुझ पर छेनी से वार किया। तुम्हारे पुरखा मुझे पूजते आये हैं। देखो मुझे हाथ मत लगाओ। आकाश पर भले ही कमन्द फेंकते रहो जिससे चांद और सितारे नीचे आ जायं पर मेरे शरीर को छेनी से छीलने का संकल्प छोड़ दो। शम्भु बराबर चट्टान को घूरता रहा। जैसे वह उस चट्टान से कहना चाहता हो—ओ मेरी चट्टान, तेरी महिमा का गान गद्दियों की बाँसुरी पर झरनों ने सुना, खेतों ने सुना, पहाड़ों ने सुना। आज झरने खुश हैं, खेत खुश हैं, पहाड़ खुश हैं। आज मैं उस सपने को सच करना चाहता हूं जो तुम्हारे अन्दर अनगित शताब्दियों से मचलता रहा है। इस पर चट्टान खामोश रही। जैसे उसने गद्दी मूर्तिकार का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया हो।

जब लोगों ने सुना कि शम्भु चट्टान पर हथौड़ा चला रहा है तो भाग कर आये और उन्होंने उसे रोकना चाहा पर उसने किसी की न मानी। बुड्ढे मोची ने भी उसे बहुत समझाया कि यह बात तो गद्दियों को भी पसन्द नहीं होगी और वे बिगड़ उठे तो उसकी जान की खैर नहीं। महाराज अलग नाराज हो जायंगे और इस बार उसे क्षमा नहीं करेंगे। मूर्ति ही गढ़ना है तो और चट्टानें थोड़ी हैं? कुछ लोग हाथापाई के लिये भी तैयार हुये। पर शम्भु का मौन-व्रत उसका सबसे बड़ा सहायक था! थक हार कर लोगों ने कहा—इससे मनमानी करने दो। महाराज तक यह खबर पहुंच ही जायगी और वे अपराधी का अपराध क्षमा नहीं करेंगे।

तिलक इस इरादे से सोनमुख आया था कि एक-आधा सप्ताह

सोनमुख में गुजार कर ऊपर धौलीधार की ओर जायगा और कुमारी बरफों को अपने हाथ से छू कर देखेगा पर वह वहीं उलझ कर रह गया। और जबसे शम्भु ने वह मूर्ति गढ़नी आरम्भ कर दी थी उसने समझ लिया कि इस वर्ष ऊपर जाने की बात सम्भव नहीं हो सकती। शम्भु संकेत द्वारा उसे समझाता कि बहुत सुन्दर मूर्ति बनने जा रही है पर मुख से वह एक भी शब्द न कहता। सूर्य निकलते ही वह चट्टान के पास पहुँच जाता और अपना काम शुरू कर देता। तिलक भी उसके पास बैठा कल्पना करता रहता कि देखें किस की मूर्ति देखने को मिलती है। कभी-कभी बुड्ढा मोची भी उधर आ निकलता। तिलक हँस कर कहता—"बैठो बाबा!" पर वह कहता—"आप बैठिए बाबूजी! मुझे तो पुराने जूते बुला रहे हैं।"

इधर मूर्ति की कुछ-कुछ रूपरेखा सी बन गई थी। यह एक ऐसे व्यक्ति की मूर्ति बनने जा रही थी, जिसे अपनी मंजिल सामने नज़र आ रही हो। क्योंकि एक पग आगे उठता दिखाया गया था। कमर से ऊपर तक काम हो चुका था। तिलक ने एक तिरखान से कहकर एक छोटी सी सीढ़ी बनवा दी थी ताकि शम्भु को ऊपर का काम करने में कठिनाई न हो।

अब तो वही लोग जो शुरू में शम्भु को रोक रहे थे कि इस चट्टान पर हथौड़ा मत चलाओ, मूर्ति देखने आ निकलते। जितने मुँह उतनी बातें। पर शम्भु की धुन की सभी प्रशंसा करते थे।

क दिन बुड्ढे मोची ने हँस कर कहा—"शायद वह किसी गद्दी की मूर्ति बनने जा रही है!

"गद्दी के साथ तो एक भेड़ भी बनानी चाहिए" तिलक कह उठा "शायद शम्भु भेड़ भी बना दे, क्योंकि अभी एक ओर चट्टान काफ़ी से ज्यादा कटनी बाकी है।"

एक दो दिन से यह खबर गरम थी कि महाराज कोई नया हुक्म निकालने वाले हैं। बुड्ढा मोची बोला—"अब शम्भु की खैर नहीं!"

वे तीन-चार अंग्रेज यात्री और उन के साथ की दोनों छोरियां धौलधार पर चट्टान के पास आईं। एक छोरी बोली—"अमा ऐसा वाला बूट नहीं मांगटा।"

शम्भु को किसी की आलोचना की कुछ परवाह न थी। उसकी छेनी बराबर आगे बढ़ती रही।

तिलक कहना चाहता था कि आप लोग जाइए और अपने देश में जाकर इस मूर्ति के बारे में जो चाहें कहते रहिए। तुम्हारी कौम के हमारे हाकिमों ने इस देश में दूसरी तरह की मूर्तियां बनवा कर खड़ी की थीं, अब हमारी बारी आई है।

अंग्रेज यात्री चले गये। उनके साथ वे कहकहे लगाती छोरियां भी चली गईं। उस दिन तिलक को अनुभव हुआ कि विदेशी लोगों के लिए सम्भव नहीं कि वे किसी देश के साथ पूरा न्याय कर सकें। पर झट यह सोच कर कि अंग्रेजों ने उसकी जन्मभूमि की स्वतन्त्रता उसे लौटाते समय अच्छे खिलाड़ी होने का प्रमाण दिया है, उसे मन ही मन उसकी प्रशंसा करनी पड़ी। फिर भी उन दोनों छोरियों के कहकहे देर तक उसे चुभते रहे।

आखिर एक दिन महाराज के मन्त्री घोड़े पर सवार हो कर सोनमुख के अड्डे पर आ पहुंचे। लोग सहम कर रह गये। दो-एक दुकानदार खुश हुए कि शम्भु अब पकड़ लिया जायगा। मंत्री जी के साथ घुड़सवार पुलिस और फौज के अफसर और सिपाही भी थे। मन्त्रीजी ने घोड़े पर बैठे-बैठे महाराज की ओर से घोषणा की—

"महाराज की आज्ञा है कि सारी प्रजा स्वराज का आनन्द प्राप्त करे। देश से फिरंगी का राज्य चला गया। आज हिमालय भी आनन्द विभोर हो उठा है। कन्या कुमारी तक स्वतन्त्रता की लहरें इस देश की प्रजा को सुखी बना रही हैं इस स्वतन्त्रता में हमारी प्रजा भी हिस्सेदार बने यही हमारी इच्छा है। इसके लिए अब प्रजा स्वयं नई सरकार के निर्माण के लिए अपने प्रतिनिधि भेजेगी।"

मन्त्रीजी के आदेश से महाराज की आज्ञा की एक प्रतिलिपि सोनमुख के अड्डे के मुखिया को दे दी गई, और मन्त्रीजी आगे की ओर घूम गये ताकि सड़क के किनारे के ग्रामों में महाराज की आज्ञा पहुंचा सकें।

सोनमुख के अड्डे के दुकानदार अपने मुखिया को अपना-अपना चन्दा लिखा रहे थे। कुलियों से भी चन्दा मांगा गया। क्योंकि स्वराज-उत्सव तो सब का ही है, अकेले दुकानदारों का नहीं। सोनमुख ग्राम के किसानों और दुकानदारों ने भी चन्दा दिया। यह फैसला किया गया कि ऊपर से नीचे जाने वाले गद्दियों को रोक कर उनसे चन्दा लिया जाय और स्वराज-उत्सव गद्दी छोरे-छोरियों के नाच से शुरू हो।

सात दिन की प्रतीक्षा के पश्चात् गद्दियों के काफिले सोनमुख के अड्डे पर आ पहुंचे। चट्टान का बदला हुआ रूप देख कर सैंकड़ों गद्दी गुस्से से आग बबूला हो गये। पर लोगों के कहने-सुनने से वे गुस्से को पीकर रह गये। बहुत से गद्दियों ने अपने-अपने फूल चट्टान के तैरों पर चढ़ा दिये। एक प्रश्न हर एक गद्दी के मुख पर अंकित नजर आता था। वे पूछना चाहते थे कि यह किस की मूर्ति घड़ी जा रही है। पर अभी इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन था क्योंकि मूर्ति की गरदन से नीचे तक ही छेनी पहुंच पाई थी।

शम्भु जल्दी-जल्दी हथौड़े और छेना से काम ले रहा था। वह चाहता था कि स्वराज-उत्सव शुरू होने तक किसी न किसी प्रकार सिर की भी कुछ न कुछ रूप रेखा सी ज़रूर बनादे।

वह रात भी कितनी सुन्दर थी जब खंडहरों से सटे हुए मैदान में लोग स्वराज-उत्सव मनाने के लिए इकट्ठे हुए। एक बहुत बड़े घेरे में गद्दियों की भेड़ें जमा कर दी गई थीं। बीच-बीच में भेड़ें ममिया उठतीं। जैसे पूछ रही हों—यह कैसा उत्सव है? एक बहुत बड़ा अलाव था जिसके गिर्द एक बहुत बड़े घेरे में गद्दी छोरे-छोरियों का प्राचीन नाच आरम्भ हुआ। छोरियों का सुनहरी रंग और भी जगमगा उठा। उनकी मेंढ़ियां लटक-लटक जातीं। उनकी आँखें झुक-झुक जातीं। जैसे

वे अपनी सुन्दरता के बोझ से स्वयं ही दबी जा रही हों। बांसुरियों वाले बांसुरियां बजा रहे थे। ढोलिए ढोल बजा रहे थे।

तिलक ने पास खड़े बुड्ढे मोची का कंधा झंझोड़ कर कहा—"अब तो चाँद और सितारों को भी चाहिए कि नीचे उतर कर गद्दी छोरे-छोरियों के साथ नाचने लगें।"

बुड्ढे मोची ने उन रुपयों में से कुछ रुपये निकाले जो उसने सर्दियों में खाने के लिये जोड़ रखे थे और अगरोला के हाथ में थमाते हुए उसने कान में कुछ कहा, और अगरोला बाज़ार की तरफ़ दौड़ गया।

"क्या मंगवा रहे हो, बाबा!" तिलक ने कहा, "इस समय किस की दुकान खुली होगी?"

"देखते जाओ," बुड्ढे मोची ने कहा।

थोड़ी देर बाद अगरोला एक पीपा उठाये लौट आया। तिलक ने पूछा—"इस पीपे में क्या है, बाबा?"

"गाय का घी है, बाबूजी," बुड्ढा मोची कह उठा, "हवन-यज्ञ तो होना ही चाहिए। स्वराज्य-उत्सव क्या नित-नित आता है?"

अगरोला कहीं से एक बड़ा कड़छा भी उठा लाया था। पीपे का मुँह ऊपर से खुला था। बाबा का संकेत पाकर उसने पीपा और कड़छा उठाया और नाचने वाले छोरे छोरियों से रास्ता माँग कर अलाव के पास जा पहुँचा। कछड़े में घी भर-भर कर, वह आग पर डालने लगा। आग की लपटों को जैसे नया जोश आ गया। गाय के घी की सुगन्ध चारों ओर फैल गई।

जब अगरोला ने बचे हुये घी का पीपा उठा कर पूर्ण आहुति के रूप में एक दम अलाव पर फेंक दिया तो एक दम लपटें ऊपर उठीं। उस समय तिलक ने बुड्ढे मोची का सिर अपने दोनों हाथों से घुमा कर कहा—"वह देखो, बाबा, चट्टान कितनी खुश नज़र आती हैं?"

बाबा बोला—"अब चट्टान नहीं, मूर्ति कहो।"

तिलक ने पूछ लिया—"जानते हो यह किस की मूर्ति है ?"

बाबा कह उठा—"भला आप ही बता, दीजिए, बाबूजी !"

"उसकी जिसकी तुम्हें इन्तज़ार थी ।"

"किसकी इन्ज़ार थी ?"

"गांधी बाबा की ।"

बुढ्ढे मोची ने उछल कर कहा—"तो गांधी बाबा सोनमुख में आ निकले ?"

तिलक कह उठा—"चट्टान से पूछ लो ।"

छोरियां और छोरे नाच में मग्न थे जिसमें पहाड़ का लहराव भी था और मैदान का फैलाव भी !

: ७ :

मैं अपराधी क्यों ?

"मैं अपराधी क्यों ?" चन्द्रिकाप्रसाद कहता ही रहा और पुलिस का सिपाही उसे पीछे से मारता-धकेलता थाने मे ले गया।

चन्द्रिकाप्रसाद २२ वर्ष का होनहार युवक है यू० पी० प्रान्त के जिला बाराबांकी का निवासी है। मैट्रिक पास है। स्वास्थ्य अच्छा है। सदाचारी है, उसकी कभी कोई शिकायत सुनने में नहीं आई। आजीविका के लिए पूर्वी पंजाब में चला आया है। इधर वह चालीस रुपये पर भर्ती हुआ था। उसके दफ्तर का अफसर उसके काम से प्रसन्न है। काम में चतुर इतना कि अपना काम करके दूसरे के काम में सहायता दे देता है! हंस मुख इतना कि कभी कोई उससे रुष्ट हो ही नहीं सकता। धर्म-भीरु है, कीड़ी की हिंसा को भी पाप समझता है।

मद्यपान से घृणा है। सिगरिट पीने का नाम तक नहीं लेता। घूंसखोरी के द्वारा आत्म हनन करके शीघ्र धनी बनने की उसे चाह नहीं। हां, अपने अफसर की आज्ञा से खाली समय में ट्यूशन द्वारा कुछ धन प्राप्त कर लेना उसे अभीष्ट है। तीन ही वर्षों में वह ६५ रु० मासिक वेतन पाने लग गया है। साहब ने उसे आश्वासन दिया है कि तुम यदि बी० ए० कर लोगे, तो मैं तुम्हें काफी उन्नति दे दूंगा। और हैड क्लर्क के रिटायर होने पर उसकी जगह नियुक्त कर दूंगा अतः वह आज कल हिन्दी प्रभाकर की तैयारी में संलग्न है। उसके साहब का नाम रायबहादुर हरिकुमार है।

[२]

रायबहादुर हरिकुमार का जन्म एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ था। पश्चिमीय सभ्यता का वह दास है। रात्रि को सिनेमा आदि देखने के

पश्चात् कोई २ बजे सोता है तो सवेरे ६ बजे उठता है। बिस्तर में ही जब तक गरम जाय पीकर एक दो सिगार न फूंक ले उसे टट्टी नहीं आती। अनेक सभा सोसाइटियों में उसका प्रवेश है परन्तु किसी भी सोसाइटी का साधारण सदस्य बनना उसे स्वीकार नहीं। किसी का प्रधान, किसी का उपप्रधान, किसी का प्रधानमन्त्री तो किसी का सहायक मन्त्री। इस वर्ष राम-लीला सोसाइटी वाले उसे कोई पद नहीं दे सके तो उसने उन्हें चन्दा देने से इनकार कर दिया। सोसाइटी के उद्देश्य से उसे कोई प्रयोजन नहीं, उसे तो अपना स्वार्थ चाहिए। येन-केन प्रकारेण अपनी उन्नति करना उसका परम-धर्म है। दफ्तर में जाना क्लब में खेलना, धार्मिक सत्संगों में सम्मिलित होना, पार्टियों में खाना पीना इन सब का एक ध्येय था उसी स्वार्थ रूपी परम-धर्म की साधना। आर्य समाज का वह वर्षों से प्रधान है परन्तु संध्या के लिए उसके पास न समय है न मन। संध्या उसे भाती ही नहीं। उसी समय में और अनेक कार्य किए जा सकते हैं। हिन्दी प्रचारिणी सभा के अनेक अधिवेशनों में उसने सभापति के पद को सुशोभित करके प्रभावशाली भाषण दिए हैं, परन्तु अपना सारा व्यवहार उर्दू में है। हिन्दी उसने कभी पढ़ी ही नहीं। अब उसने हस्ताक्षरों के लिये ह० क० (र० ब०) लिखना सीख लिया है। मद्य निषेध कमेटी का वह उपप्रधान है परन्तु स्वयं इतनी मद्य पीता है कि कभी-कभी क्लब से घर पहुँचना ही उसके लिये अत्यन्त कठिन हो जाता है। घण्टों ब्रिज खेलता है सौ पचास की हार जीत हो जाना मामूली बात है। शहर के सभी बड़े-बड़े अफसर इसी क्लब में ब्रिज खेलने के लिये आते हैं। कल ब्रिज में राय-बहादुर साहिब ने ५१ रुपये हारे, सुपरिन्टैन्डैंट पुलिस ने १५ रुपये जीते और सिटी मजिस्ट्रेट ने २६ रुपये जीते। शहर के सभी बड़े २ अफसरों पर उसका प्रभाव है अतः शहर में उसकी मान प्रतिष्ठा बहुत है। बड़े २ ठेके उसको आसानी से मिल जाते हैं। और अब तो उसने सी० एस० ओ० के साथ मिल कर गत

तीन वर्षों में लाखों रुपये धन कमाया है। डील-डौल बहुत अच्छा है। चेहरे पर खूब रौब है, पर अंदर से काम खोखला है और तेज समाप्त प्राय है। स्वास्थ्य हमेशा गिरा रहता है; औषधियों के विज्ञापनों को बड़े चाव से पढ़ते हैं। पिछले महीने में ३१०) की औषधियों के वी० पी० आये सर्दियों में सिद्धमकरध्वज खूब खाते हैं सच पूछो तो औषधियां के बल पर ही इतना कार्य करते हैं। और ५० वर्ष के होते हुए भी ३५ वर्ष के प्रतीत होते हैं। उनके अनन्य मित्र उनके यौवन को देख कर चकित होते हैं और अपने यौवन के रहस्य को देखकर वाजीकरण औषधियों के प्रयोग को न बता कर सत्यता और दानप्रियता के अनुष्ठान को ही घोषित किया करते हैं। जिससे उनकी धाक समाज पर और भी अधिक जम जाती है। दफ्तर के क्लर्क और असिसटैन्ट उनसे काफी डरते हैं, परन्तु चन्द्रिकाप्रसाद पर उनकी विशेष कृपा दृष्टि है!

[२]

दीपमाला का पवित्र दिवस आया। स्वतन्त्र भारत में यह पहली दीपमाला थी। अतः रायबहादुर हरिकुमार ने भी प्रसन्न होकर अपने दफ्तर में एक दिन के स्थान पर दो दिन का अवकाश कर दिया। चन्द्रिकाप्रसाद को ट्यूशन के कल दस रुपए मिले थे, इसमें से छः रुपए दस आने उसने सामान लाने के लिए व्यय कर दिए और तीन रुपए छः आने उसके पास थे। उसने सुन रक्खा था कि दीपमाला की रात्रि को जो पुरुष जुआ नहीं खेलता वह गधे की योनि में जाता है। उसने अपने पिता को दीपावली के दिन सदा जुआ खेलते देखा था। जुए से उसे घृणा है परन्तु गधे की योनि में पड़ना उसे स्वीकार नहीं, इसलिए तीन रुपए छः आने से उसने अपने अन्य मित्रों के साथ जुआ खेलने का कार्यक्रम बनाया। महालक्ष्मी उसी पर अपना प्रसाद न्योछावर करती है, जो दीपमाला की रात को जागता रहता है। १० बजे रात्रि को जुए का कार्यक्रम आरम्भ हुआ, सवेरे के तीन बज गए। चन्द्रिकाप्रसाद इस

समय तक आठ आने की जीत में था। इसी समय बाहर खटखट की आवाज हुई। चन्द्रिकाप्रसाद ने दरवाजा खोला तो पुलिस का सिपाही सामने नज़र आया। उसको देखते ही दो खिलाड़ी भाग गए, शेष तीन को उसने जुआ खेलने के अपराध में पकड़ लिया। दो व्यक्ति तीन-तीन रुपए देकर छूट गए, परन्तु चन्द्रिकाप्रसाद वहीं डटा रहा। "मैं अपराधी क्यों?" चन्द्रिकाप्रसाद यह कहता ही रहा, और पुलिस का सिपाही उसे पीछे से मारता-धकेलता थाने में ले गया।

[४]

थाने में थानेदार ने उसका वक्तव्य लिखा। चन्द्रिकाप्रसाद ने इस बात को स्वीकार किया कि वह जुआ खेलता था, परन्तु वह अपने आपको अपराधी मानने, घूंस देकर छूटने, अथवा क्षमा मांगने के लिए तैय्यार नहीं था। "मैंने कोई अपराध नहीं किया, धार्मिक कृत्य का अनुष्ठान किया है। इससे पहले न कभी जुआ खेला है, न आगे खेलने का विचार है। और यदि जुआ खेलना अपराध ही है तो सरकारी क्लबों में लोग प्रति दिन जुआ खेलते और मद्य आदि का पान करते हैं, वे सभी अपराधी हैं। मेरे पास तो जुआ खेलने को कुछ है भी नहीं। कुल तीन रुपए छः आने हैं। केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रहा था, पांच घण्टे खेलता रहा, कुल आठ आने जीते हैं। मेरा अभिप्राय हार जीत अथवा जुआ खेलने का कदापि न था। मैं तो इस बहाने से सारी रात जागते रहकर महालक्ष्मी को प्रसन्न करके धर्मशास्त्र के अनुसार गधे की योनि से बचना चाहता था। मैं कदापि अपराधी नहीं"। इस प्रकार चन्द्रिकाप्रसाद कहता ही रहा, परन्तु थानेदार ने उसका चालान कर दिया। सुप्रिंटेन्डेन्ट पुलिस ने केस को अच्छी प्रकार देखा। "अभियुक्त स्वयं स्वीकार करता है कि मैं जुआ खेलता पकड़ा गया हूँ"। उसके अभिप्राय से हमें कोई प्रयोजन नहीं! चन्द्रिकाप्रसाद को हवालात में दे दिया गया और उसका मुकदमा सिटी मैजिस्ट्रेट के सपुर्द हुआ।

चन्द्रिकाप्रसाद लोकप्रिय नवयुवक था उसके अनेक मित्रों ने उसकी जमानत देना चाही, परन्तु उसने जमानत पर आने से इन्कार कर दिया। एक योग्य वकील को उसका मुकदमा लड़ने के लिए नियुक्त किया गया। ये वकील महोदय उसी क्लब में सिटी मैजिस्ट्रेट के साथ ब्रिज खेला करते थे। उन्होंने चन्द्रिकाप्रसाद के वक्तव्य को पढ़ा। उनको पूरा विश्वास था कि मैं अभियुक्त को छुड़ा लूंगा। मुकदमा पेश हुआ। कचहरी का कमरा दर्शकों से खचाखच भर गया। चन्द्रिकाप्रसाद ने अपना वही वक्तव्य दिया। योग्य वकील ने बड़ी योग्यता के साथ अपना दृष्टिकोण पेश किया, न्याय की दृष्टि में केवल काम पर ही नहीं, उसके उद्देश्य पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। एक पुरुष अपने वैरी की हत्या कर देता है, उसे फांसी का दण्ड दिया जाता है। दूसरा पुरुष प्रमाद के वश में मोटर तेज चलाकर किसी पथिक की हत्या कर देता है तो उसे एक दो वर्ष का दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है। इसका उद्देश्य जुआ खेलने का कदापि न था।"

सिटी मैजिस्ट्रेट ने वकील के दृष्टिकोण और उसके उदाहरण को स्वीकार करते हुए कहा,—"परन्तु काम की भी उपेक्षा तो नहीं की जाती। मोटर संचालक को भी दण्ड तो मिलता ही है।

योग्य वकील ने उसके दफ्तर का रिकार्ड उसकी सत्य प्रियता, उसका सदाचार और अन्त में उसकी नई जवानी आदि अनेक बातों पर बल देते हुए उसके छोड़ देने के लिए अपील की। सिटी मैजिस्ट्रेट ने भी अभियुक्त की स्वीकृति के कारण उसे बिल्कुल छोड़ देने के लिए विवशता प्रकट की। सिटीमैजिस्ट्रेट ने अपना निर्णय दिया। उत्सुक दर्शकों ने ध्यानपूर्वक सुना। चन्द्रिकाप्रसाद अपराधी ठहराया गया और उसे एक दिन का दण्ड दिया गया। तब तक चन्द्रिकाप्रसाद कचहरी के कमरे में अपराधी बना रहा, उसका हृदय कहता ही रहा, "मैं अपराधी क्यों?"

कचहरी के कमरे से छूटकर चन्द्रिकाप्रसाद सीधा क्लब पर पहुंचा। बड़ी देर तक वहां खड़ा देखता रहा, परन्तु वहां पर न सुप्रिटैन्डैन्ट पुलिस पहुँचा, न सिटी मजिस्ट्रेट और न ही योग्य वकील। पहले तो इन्होंने कभी नागा नहीं किया था, आज क्या हो गया। कई दिनों तक उसको देखने के लिए चन्द्रिकाप्रसाद प्रतिदिन वहां जाता रहा। परन्तु उसे सफलता न मिली। रह-रह कर उसका हृदय उनकी कायापलट का कारण जानना चाहता है, और कहता है "मैं अपराधी क्यों ?"

Love to 196
(CHAMKI)

: ८ :

दस के सौ

सेठ जोटीराम और उसका मुनीम एक बढ़िया मोटर में, जो सेठ की कई मोटरों में से एक थी, दिल्ली की सड़क पर संध्या के जरा पहले जा रहे थे। सेठ को अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में विभाग-विशेष के कर्मचारी से परमिट लेना था। परमिट मिल जाय तो लाखों के वारे-न्यारे होने की आशा थी—विश्वास भी। मोटर सड़क-किनारे के एक मंदिर के सामने से निकली। सेठ ने एक क्षण के लिए आंखें मूंद कर मन्दिर के प्रति सिर घुमाया, नवाया और हाथ जोड़े, मन ही मन प्रार्थना की—"भगवान्, कार्य की सिद्धि हो जाय तो जो कुछ पुण्य हो सकेगा करूंगा!" मन्दिर से आगे निकलते ही सेठ का हाथ जेब में पड़े हुए बटुए को छू गया। बटुए में कई नोट सौ-सौ रुपये के और कुछ दस-दस रुपये के—थोड़ा- फुटकर भन्ना भी। सेठ ने पुण्य के रूप का मन में निश्चय कर लिया। मुनीम ने भी आंखें मूंद कर उसी प्रकार हाथ जोड़े, प्रार्थना की—'हे भगवान्, मेरी तनख्वाह बढ़ जाय!" परन्तु उसने किसी पुण्य का संकल्प नहीं किया।

ड्राइवर सड़क की विघ्न-बाधाओं से मोटर को बचाता हुआ लिए जा रहा था। मन्दिर की ओर उसका ध्यान नहीं गया।

कर्मचारी की कोठी पर पहुँचते ही सेठ जोटीराम ने मन ही मन फिर किसी का स्मरण किया! कर्मचारी मिल गया—पहला सुफल तो यह हुआ। और दूसरा यह कि कर्मचारी ने सेठ जोटीराम को जल्दी से मुलाकात दे दी। परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने का क्रम जारी हुआ, सेठ ने सोचा।

कर्मचारी ने सेठ को परमिट-प्रदान में तत्कालीन बाधाएं बतलाईं,

परन्तु उसकी आशा को खंडित नहीं किया। किसी दिन होकर ही रहेगा, सेठ को विश्वास था।

× × × ×

बातचीत की समाप्ति पर कर्मचारी ने कहा, 'मुझको एक काम से जाना है।" परन्तु मोटर बाल-बच्चों को बिठला कर कहीं बाहर चली गई थी। कर्मचारी को जिस स्थान पर जाना था, सेठ को मालूम हो गया।

सेठ ने अनुरोध किया, "मैं पहुँचाए देता हूँ। मोटर आप को भेज दी जायगी।"

कर्मचारी ने थोड़े से संकोच के बाद सेठ के अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

कर्मचारी सेठ के साथ मोटर में चल दिया। रास्ते में फिर वह मन्दिर मिला और मन्दिर के बिलकुल निकट बड़े बड़े तिलक लगाए एक भिखारी। उसने कुछ दान पाने के लिए मोटर की खिड़की की ओर घिघियाते हुए दोनों हाथ पसारे। पहले सुफल और फिर पुण्य था पहले पुण्य और फिर उसका फल ?—सेठ के मन में प्रश्न उठा।

कोई बड़ी बात नहीं है—सेठ के संकल्प ने भीतर से कहा। तुरन्त उसका हाथ बटुये पर गया।

सेठ ने ड्राइवर को आदेश दिया, "मोटर रोको !"

ड्राइवर ने मोटर रोक ली।

कर्मचारी ने कुछ विस्मय के साथ सेठ की ओर देखा। मुनीम ने भी।

सेठ जोटीराम ने बटुआ निकाल कर खोला। एक बार भिखारी पर और एक बार कर्मचारी पर उसकी दृष्टि गई। बटुये पर अधिक ध्यान गड़ाने की जरूरत नहीं पड़ी। पुण्य यदि बहुत गुप्त न रखा जा सके, तो बहुत प्रकट भी न होना चाहिये।

सेठ जोटीराम ने लापरवाही के साथ एक नोट निकाला और

शीघ्रता के साथ भिखारी की ओर खिड़की के बाहर हाथ निकालते हुए बढ़ाया। मोटर का एंजिन बन्द नहीं किया गया था। कर्मचारी को अपने अभीष्ट स्थान पर जल्दी पहुंचाना था। सेठ को और अधिक विलम्ब करने की जरूरत भी न थी। भिखारी तो आतुर था ही, उसने तुरन्त झपट लगाई। भिखारी के आतुर हाथों और सेठ की व्यग्र उंगलियों के बीच में कुछ इंचों का ही अन्तर था, जब सेठ की आंख दान के माध्यम—उस नोट पर गई। नोट सौ रुपये का था। पर सेठ ने संकल्प दस रुपये के दान का ही किया था।

सेठ की उंगलियाँ थोड़ी-सी झिझकीं। भिखारी का हाथ और भी अधिक आतुर हुआ। क्षण के एक छोटे से अंश में सेठ की आंख कर्मचारी की ओर घूम कर फिर नोट पर पहुँची। सेठ की टेहुनी भीतर की ओर सिकुड़ने ही को थी कि भिखारी की उंगलियाँ सेठ की उंगलियों से जा टकराईं। सेठ के हाथ से नोट छूटकर भिखारी के हाथ में पहुँच गया।

भिखारी चिल्लाया, "जय होय! बढ़ती होय?"

सेठ की आँख फिर कर्मचारी की ओर गई और फिर नीची पड़ गई। कोई भी नहीं देख सका कि सेठ किसी भी निश्चय पर नहीं पहुँच पा रहा है।

सेठ ने दबे स्वर में ड्राइवर से कहा, "चलो।"

ड्राइवर ने मोटर को चला दिया। जब कर्मचारी अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचा, तो सेठ ने पूछा, "कितनी देर ठहरिएगा यहां?"

कर्मचारी ने बतलाया।

मोटर लेकर सेठ जोटीराम बङ्गले के बाहर सड़क पर आ गया। एक किनारे रोककर सेठ ने मुनीम को नीचे उतारा और अकेले में बात करने लगा।

"तुम मोटर लेकर तुरन्त मन्दिर पर जाओ। उस भिखारी से सौ रुपये का नोट वापिस लो और दस रुपये का उसको दे दो। समझ

में नहीं आता कि गलती कैसे हो गई। विचार केवल दस रुपये देने का था, परन्तु चला गया सौ का नोट।"

"परन्तु यदि वह भिखारी वहाँ न मिला?"

"अभी वहीं होगा, मुझको विश्वास है। कोशिश करो।"

"मिल भी गया और उसने किनर-मिनर की तो?"

"उसके बाप का मुझ पर कुछ पावना था जो किनर-मिनर करेगा।"

"नहीं मैंने एक बात कही। वह कह सकता है कि देने वाला कोई और था, लौटाने वाला कोई और आ गया। ऐसी हालत में मैं मुश्किल में पड़ जाऊँगा।"

"यों ही टाल मटोल करते हो! कह देना कि अपने सेठ के हुक्म से आया हूँ।"

"आप भी साथ चले चलते तो अच्छा होता।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगा। इस पेड़ के नीचे टहलता रहूंगा, तब तक तुम हो आओ। जल्दी करो, जाओ।"

मुनीम को नोट की अदला-बदली की कोठियों की उतनी फिकर नहीं थी, जितनी अपनी नौकरी की और वेतन बढ़वाने की।

मुनीम सेठ जोटीराम से दस रुपये का नोट लेकर मोटर की ओर बढ़ा।

"और देखो", सेठ ने कहा, "जल्दी लौटना, ऐसा न हो कि साहब को इन्तजार करना पड़े।"

मोटर चली गई। जोटीराम पेड़ के नीचे इस तरह टहलता रहा, जिसमें कोई जान पहिचान वाला निकले तो चीन्हने न पावे।

× × × ×

थोड़ी देर बाद मोटर लौट आई। मोटर में मुनीम न था! सेठ ने कारण पूछा, "कहां है? क्यों रह गये? आए क्यों नहीं? क्या कह रहे हैं?"

ड्राइवर ने सब प्रश्नों का सार सुना दिया, "किसी की तलाश

में फिरते-फिरते जब समय हो गया तब वहीं रह गए, और गाड़ी लौटा दी। कहते थे, जब यहां होकर निकलो, तब मुझको ले लेना।"

सेठ को यह अच्छा नहीं लगा, परन्तु नियत समय पर कर्मचारी को उस स्थान से लेना था।

कर्मचारी को वहाँ से लेकर जोटीराम मन्दिर के सामने आया! वहाँ सड़क के किनारे एक अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी थी। गाड़ी रुक गई। मुनीम गाड़ी की ओर बढ़ा। भीड़ में वह भिखारी भी था। भिखारी और भीड़ भी गाड़ी के कुछ निकट आई।

"क्या बात है?" सेठ ने मुनीम से पूछा।

मुनीम का उत्तर सुनने से पहले ही जोटीराम कुछ और कहने को हुआ, परन्तु उसको शब्द न मिले। मुनीम ने उत्तर दिया, "यह कहता है कि मुझको दस ही रुपये का नोट दिया गया था।"

"हाँ सरकार, कहीं ऐसा हो सकता है? भला मैं धोका क्यों देने चला? कोई किसी भिखारी को भला सौ रुपये क्यों दान करने चला? आप बहुत बड़े हैं; आपका भला हो।" भिखारी चिलाया।

मुनीम ज़रा तेज़ हुआ। बोला, "पुलिस में रिपोर्ट करते हैं!" इसकी खाना-तलाशी ली जाय तो सौ रुपये का नोट निकलेगा।"

कर्मचारी ने कहा, "और यदि मुकदमा चलने पर भिखारी ने कहा कि सौ रुपये दान में दिए गए थे, तो? चोरी या धोकेबाज़ी का मुकदमा तो चल नहीं सकता।

भिखारी ने फिर शोर किया, "जय होय सरकार की। सरकार ने भी तो देखा था, जो कुछ सेठजी ने मुझ को दिया था—वह बहुतों ने देखा होगा।

कर्मचारी ने सोचा, मुकदमा चला तो गवाही में जाना पड़ेगा और मुकदमा चला भी तो किस बाढ़ पर? कर्मचारी की त्योरी बदली, भौंहें सिकुड़ी, होठ चढ़े और उसके मुँह से निकला, ओफ़! क्या वाहियात बवाल खड़ा कर दिया है। मुझको तो एक-एक मिनट की मुश्किल

पड़ रही है ।"

और सेठ को एक-एक सैकिन्ड की मुश्किल पड़ रही थी। सौ रुपये का नोट बटुए से निकल ही चुका था, परमिट भी विदा लेने को ही थी। सेठ को क्रोध आ गया। मुनीम से कहा, "तुम बड़े मूर्ख हो! आओ भीतर व्यर्थ का बतंगड़ खड़ा कर रखा है।"

"मैंने ?" मुनीम ने सोचा और नीची गर्दन करके गाड़ी में आ बैठा। गाड़ी चल दी।

सेठ ने कनखियों कर्मचारी के प्रति देखा। उसके चेहरे पर क्षोभ के कुछ चिन्ह अब भी बाकी थे। सेठ ने उन चिन्हों को पोंछने का निश्चय किया। कहा, "साहब, हमारा यह मुनीम बिल्कुल उजबक है। मन-माने काम करता है, आव देखता है न ताव।"

मुनीम ने सुन लिया; सांस दाब कर रह गया।

कर्मचारी बोला, "मुनीम क्या अपनी मर्ज़ी से आया था।

"और नहीं तो क्या ?" सेठ ने उत्तर दिया।

मुनीम ने कुछ कहने के लिये सेठ की तरफ गर्दन की और सीट से कुछ उझका। उसके चेहरे पर ग्लानि, क्षोभ, निराशा और करुणा की स्पष्ट रेखाएँ अंकित थीं। परन्तु वह कुछ कह नहीं सका। फिर यथावत् बैठ गया।

जब कर्मचारी अपनी कोठी पर पहुँच कर गाड़ी से उतरा, सेठ ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ उससे पूछा, "तो मुझको कब आने की आज्ञा होती है ? कब तक मिल जायगा परमिट ?"

"कुछ नहीं कह सकता; हाल में तो कोई आशा मत करिए !" कर्मचारी ने उत्तर दिया और अपनी कोठी के भीतर चला गया।

सेठ ने ड्राइवर से कहा, "उस रास्ते से नहीं दूसरे रास्ते से घर ले चलो।"

: ९ :

पद का मद

जो आज की जैसी तंगी में एक हद तक हवा पीकर जाता है उसे शायद कहीं हवा खाने की जरूरत नहीं; मगर पाँव पर पाँव रख पुलाव-कलिया सुड़कने वाला अगर एक एड़ी का पसीना चोटी तक उठाते हुए सुबह शाम मैदान की हवा न खाय, तो वह कलिया लगता जैसे आँतों में कुलाँच लेने · और, कहीं आगे छलांग मार उसकी भूख ही को पकड़कर खा गया, तो फिर लीजिये, बैठ-बिठाये आँतें गले पड़ीं। जब भूख की लगी ही न रही, तब तर माल की तरी-रही न रही। आखिर रस का संचार तो किसी षट्रस भोजन में नहीं, हमारी रुचि के उभार में है। और, जब भूख ने मुस्कराकर हमारी रुचि ही न गुदगुदाई, तो फिर रसना रस-सिक्त हुई तो क्या और पुलाव-मुतंजन में केसर का पुट पड़ा तो क्या ?

आखिर यह बात क्या है कि अमीरों की जिस कुंज-गली में आठों पहर दूध और मलाई के फव्वारे छूटते हैं, वहाँ नथने फुलाने और आँखें सेंकने के सिवा कोई चारा नहीं। किसी की रसना में वह सत्ता ही नहीं कि इस भोग का उपयोग होता है। उसकी आँख में चाहे जो दम हो, आँत में कोई बल नहीं।

हाय रे भूख का भूखा, और हाय रे तेरी तड़प का तमाशा ! जब मुट्ठी-भर भुना चना भी गले के नीचे संवार रखना तेरे लिए एक संकट का मोर्चा है, तो फिर कह तो सही, तेरे चौके में अशर्फियों की बघार का क्या मोल ? तेरे कानों में हीरे के टाप का क्या जमाल ! और, तेरे सर पर झूमते चँवर और छत्र का क्या कमाल ! शायद तेरा अपना किया है, जो यों तेरे आगे आया है। न तू पड़ोस से पराङ्मुख होकर जैसे—

तैसे दोनों हाथों भागों की भरमार करता, न आज यों हाथ मल-मलकर होंट चाटता। आखिर तू पैसे के जोर पर गरीब के मुँह का अन्न भी ले लेगा और उसकी भूख भी—दोनों ? कैसी मूर्खता ?

× × ×

और कुछ भी कहे, भूखा होना मेरी निगाह में तो कोई वैसा भाग का खोटा होना नहीं। आज में जब किसी क्षुधा-पीड़ित को देखता हूँ, तो करुणा आने के पहले उस पर ईर्ष्या उपट आती है। बस अपनी-अपनी बीती और अपनी-अपनी दृष्टि। अगर भूख लिये बेखाये रहना मौत का सामना है, तो फिर तर माल से भरे थाल को आगे रख बगैर भूख के कौर उठाये जाता और रह-रहकर आँत का उलटकर गले आना भी कोई आसान मोर्चा नहीं।

हमने भी इसी भूख की माला फेरते दर-दर की खाक छानी है। आज आज उठते-बैठते, सोते-जागते उसी की खुशामद का सिलसिला है। मगर कभी जो वह कम्बख्त खुलकर मुस्काई हो। बड़ी हुज्जत पर किसी पल आई भी तो बस, यह आई और वह गई ! हाय रे कर्म ! लोहे की पेटियों पर मँजी हुई जबान आज साग और पपीते की फलियों पर उठ-उठकर बैठ जाती है। रसना बिचारी तो अपनी स्वाति की बूंद के लिए पपीहा हो रही है जैसे। जिस रस की चाशनी को उसका रेशा-रेशा ढूंढ़ रहा है, उसे कण्ठ की सीमा पार करने में खैर नहीं, और जिसकी अन्दर आसानी से पैठ है, उसे रसना पासपोर्ट देने को तैयार नहीं।

हमने क्या-क्या नहीं किया—दवा भी, दुआ भी, नये-नये कैंप लगाये; मगर हर बार भाग्य की ओर से जवाब आ गया !

वह जो किसी ने कहा है कि 'मरता क्या करता' ? बस अब हाथ पैर मार घंटों ऐड़ियाँ घिसते मैदान की हवा खानी है। सावन का मूसलाधार हो या माघ का हड़कम्प, यहाँ पौ फटने की भी इन्तज़ार नहीं। लिहाफ की मोटी मस्ती और नींद की खुमारी से अथने को किसी

तरह खींचकर चार मील के लिए चक्कर के लिए तैयार होना है। वह हवाखोरी तो जैसे कौड़ी कोस दौड़वाली मजूरी से भी गई बीती है। कहीं किसी दिन गैरहाजिरी हो गई, तो बस, लीजिए, भूख तिनक उठी। उस दिन की खुराक ही कट गई। और, अब वह खुराक में भी खुराक क्या है—उबाली हुई सब्जी, न मसाला, न घी !

× × ×

पौ फटने पर आई है। हवा में मीठी सी खुनकी है। पछिया हवा का तेगा अब हड्डियों पर नहीं बोलता। एक हल्की-सी सिहरन उठाकर रह जाता है।

हम यथापूर्व प्रकृति के द्वार पर भूख की भीख मांगने घर से बाहर आये कि सामने गली के नुक्कड़ वाले भिखमंगे पर नजर पड़ी। वह भी विचारा मुंह अंधेरे ही अपनी फेरी पर निकलता है। उसे भीख की तलाश है, हमें भूख की। वह तो दुआ देकर पैसा पा लेता है। हम पैसा देकर भी कहीं भूख पाते, सो मनों खरीद लेते। आखिर भूख का भिखारी किस दानी की चिलम भरे, किस दर पर अपना सिर फोड़े।

"ले भई, यह चवन्नी ले। तेरी दुआ से मुझे सेहत तो आने से रही।—पल-भर चित्त को शान्ति भी तो मिले।"

और हम मैदान की ओर मुड़ गये।

तभी हमारी दृष्टि सामने रमेश पर पड़ी। हम जरा चौंक पड़े। अरे, आज हमारी गली यह कैसे आ निकला ! इसे तो जब देखा, तब किसी राग-रंग की महफिल में देखा—यहाँ कहाँ से ठमक पड़ा यह !

"अजी सुनो भी, कहाँ उड़े आ रहे हो ?"

"क्या बताऊँ ?" रमेश टपक पड़ा ?

"तुम्हें भी हमारी तरह भूख के लाले पड़े होंगे ! थे भी बड़े रस के शौकीन तुम !"

"यह क्या कह रहे हो तुम !" वह लगा आंखें फाड़ देखने।

"यही कि दो पल के स्वाद के पीछे अपनी भूख खो बैठे ! नहीं तो

भला इस भोर की कनकनी में····"

"अरे भाई, किस्मत की बेतुकी तो देखो कि जब खाने को तरी थी, तब भूख की कमी कौर उठने न देती रही। आज अब खाने को कुछ न रहा, तो भूख आई है सताने। बस, किसी करवट कल नहीं!"

"सच! तो तुम सचमुच भूखे हो—ऐसा? लो, फिर पौ बारह।"

"राम कहो, भगवान् न करे किसी के ऐसे दिन..."

"अजी, आये भी तो! भूख रही तो भोल की लिट्टी भी पुलाव और फिरना होगी। घर में अन्न न होने से पेट में भूख न होना कहीं भयंकर है।"

"ओ? जभी तुम सवेरे-सवेरे······"

"करें क्या? चारा? मगर तुम जो यह सरपट······"

"क्या बताऊँ, जा रहा हूँ मरने!"—उसकी आँखें झेप गईं।

"आखिर क्या ऐसी चोट है? फिर किसी की चोटी गले पड़ी है क्या?"

"अजी, चोटी नहीं रोटी है—रोटी। आज तो रोटी के तले दिल की रट भी दबी है।"

"हमीं से लगे उड़ने! भला तुम्हें क्या ऐसी कमी है!

"वक्त की खूबी! पैसे उड़ गये। उड़ गईं दिल की तमाम मचलें।"

"दुत! जैसे कि दिल भी पैसे का मुँह जोहता है!

"अजी, हर दिलचले के दिल की कुंजी तो उसकी जेब में रहती है? वही ठण्डी पड़ी है, तो फिर दिल बुझा ही समझो। वही हम हैं, वही दिल। परन्तु न वह लगन है, न वह स्पन्दन।"

तभी हमने देखा कि रमेश का चेहरा उतरा हुआ है। आंखों में न वह चमक है, न होठों पर वह पुलक। तो क्या यह रोटी की चिन्ता है, जो उसे चाटे जा रही है तिल-तिल! एक वह दिन था कि हज़रत की बोटी-बोटी फड़कती रही—जैसे जीवन में कोई जिम्मेवारी नहीं, मगर

बाप के पसीने की कमाई भींगती मसों के लिए अक्सर मीठे जहर की चुस्की हो जाती है। वैसी चुस्की न होती, तो उसकी मूछें न कड़ी होतीं और न होती आंखों में वह सुर्खी। हो-न-हो आज उसी चुस्की की कमी है जो उस लहराती रसमस्ती की जगह एड़ी से चोटी तक एक अजब पस्ती-सी छा रही है। कुछ-का-कुछ हो रहा है विचारा। क्या था क्या हो गया। सिगरेट जल गई है, मगर लटकी हुई राख गिरने को बाकी है।

उसके पिता को गये पांच साल बीतने को आये, मगर कभी जो उसने अपनी जिम्मेवारी समझी हो। जब जैसी मन की हवा आई, उसी मौज पर उड़ता फिरा। आज यह रोटी की तलाश उसके लिए मौत की तलाश जो हो, मगर एक लिहाज से तो यह अभिशाप नहीं, वरदान है। आखिर यह कितने पानी में है—यह होंश तो आया। वह पीछे मुड़कर न भी देखे, अब आगे कदम तो देख-भालकर देगा। और, चादर में फैलाव की कमी है, तो पैर सिकोड़कर रखने की लत तो लगी।

"तो है कहां कोई साधन ?"

"है क्यों नहीं ? बृजबिहारी जो अपना है।"

"कौन बृजबिहारी ?"

"अजी, वही जो हमारे यहाँ पलकर जवान हुआ; बाबूजी ने उसने पढ़ाया-लिखाया—भूल गये ?"

"अच्छा ! वह ! मगर उसके हाथ में क्या रखा है ?"

"अजी, वह क्या वही बिरजू है आज ! कहाँ से कहाँ उड़ गया जैसे। बरसों कचहरियों में भटकता रहा—कहीं कोई जगह मिलती न थी। आखिर बाबूजी ने ही वही वह डोरी डाली कि सरकारी दफ्तर में जगह मिल गई। आज तो लोटपोटकर कंट्रोल में घुस गया है। हमने तो इधर देखा नहीं, सुनते हैं कि अब कोट-पैंट डाटे चलता है। अफसर का ओहदा पा गया है न !"

"लो, तब तो पाँचों उंगलियाँ घी में रहेंगी तुम्हारी !"

एक झेंप की हंसी हंसता हुआ वह स्टेशन की ओर मुड़ गया।

२

सुबह के सात हो रहे होंगे। हवा भिर भिर चल रही है।

स्टेशन जो पहुंचा तो देखा. अभी गाड़ी में आध घण्टे की देर है। बुकस्टाल पर खड़े होकर नई जगमगाती किताबों पर एक सरसरी निगाह डाली। आयें जो मुड़ा तो देखा, सामने रमेश खड़ा है। एँ ! आज यह फिर कैसे टपक पड़ा ! और चट ख्याल हो आया कि शायद कोई जगह मिल गई होगी, आया होगा घर पर सामान ले जाने। अच्छा हुआ अब अपने पैरों पर खड़े होने की गुंजाइश हो गई और, हमने चाहा की आगे बढकर बदाई देते हुए उसकी पीठ थपथपा दें। मगर वह न जाने क्यों आँखें उठा देखता भी नहीं। कुछ का कुछ हो रहा है जैसे।

हमने आगे बढ़कर पुकारते हुए कहा—" क्यों भाई ! तुम सरकारी दफ्तर में क्या गये कि दुनिय से आँखें ही फिर लीं ?"

कोई जवाब नहीं।

"अरे, आज यह क्या हो गया है तुम्हें ?"

हमने समझा कि नई जिम्मेवारी आ रही है सर पर, वही जरा विचलित है अन्दर-ही-अन्दर।

" और तुम्हारा 'लगेज' कहाँ है ?"

जब वह मुँह फेरे ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा, तो हम सरककर उस के पास चले आये और उसे साथ-साथ लिये प्लैटफार्म के सिरे पर बढ़ गये।

"अच्छा, वह तुम्हारे हाथ में क्या है—ऐसी वजन छड़ी ?"

वह जरा तैश और कुछ रोब के साथ बोला—"अजी, गुप्ती है—गुप्ती।"

तो किसी पर हाथ साफ करने के इरादे हैं क्या ?"

"जी ! बृजबिहारी को आज छठी का दूध याद कराकर छोड़ूंगा—

चाहे जो हो !"

"पगले हो रहे हो क्या ?"

"जी ! तभी तो जा रहा हूँ इसी ट्रेन से !"

"आखिर बात क्या है ?'

'कमीने को अफसरी की कुर्सी क्या मिली—भेड़ से भेड़िया हो गया है जैसे। कहाँ पाँत निपोरे चलता रहा, कहाँ दाँत गड़ाने लगा सरासर। बस, ऐंठा-ऐंठा फिरता है। उस दिन भेंट जो हुई, तो पहचाना तक नहीं, कुर्सी छोड़कर उठना तो दूर रहा। हमीं से बना और हमीं से यह ठसक !"

"तो उसके डेरे पर क्यों नहीं मिले ?"

"सो तो घर पर पहुँचा, तो सुना कि साहब दफ्तर हैं। दफ्तर गया तो कुछ न पूछो, ऐसी आँखें फेर लीं कि क्या बताऊं, लहू का घूंट पीकर रह गया। घन्टों इन्तजार के बाद आफिस में गया भी तो साफ़ जवाब कि दफ्तर में कोई जगह नहीं।

"तुम भी बस, ऐसे-वैसे ही मालूम होते हो। कभी कोई रहा है अपने में अफसरी का घूंट पीकर ! खासकर वह, जिसे यह रुतबा शायद सपने में भी सपना था। अजी, यह तो एक नशा है, नशा। आँखें ही क्या, दिमाग तक फिर जाता है।"

"ठीक है। तो हम भी चले हैं उसका नशा झाड़ देने !"

"अरे भाई, क्यों नाहक लाल-पीले हो रहे ? तुम्हें एक किस्सा सुनायें—

"एक बार नवाब वाजदअलीशाह शाम के वक्त हवाखोरी के लिए शहर से बाहर निकले। हाथी की सवारी थी। ताड़-सा ऊंचा मस्त हाथी; उस पर गंगा-जमनी अमावरी। एक तमाशा था तमाशा ! हाथी जब गोमती के किनारे निकला तो बगल के ताड़ीखाने से एक कुंजड़ा लपककर सामने गया और अमावरी पर बैठे नवाब साहब की ओर रुख कर कड़ाके के साथ पुकार उठा—"क्यों बे ! हाथी बेचेगा ?"

'एक सकते का आलम ! उसकी गुस्ताखी पर लोग दंग रह गये। फीलवान गुर्राया। जरा-सा हाथी ललकार देता तो मियाँ उसी दम भुर्ता हो जाते थे ! उधर घुड़सवारों ने टपटकर घेर लिया कि टुकड़े-टुकड़े कर गोमती में फेंक दें। मगर नवाब ने ऊंगली दिखाई—"कल सुबह इसे हाजिर करो।"

"सुबह भरे दरबार में जब सामने लाया गया, तो नवाब साहब ने बड़े तमाक से पूछा—"हाँ बे ! हाथी खरीदेगा ?"

"कुंजड़े को काटो तो लहू नहीं। सर झुकाये बड़ी नरमी से बोला—जहाँपनाह ! हाथी ख़रीदने वाला ताड़ की ऊँचाई पर रहता है—मेरी क्या बिसात !"

"नवाब साहब हंस पड़े।

"तो समझे भैया ! वह आँखें फेर रोबगाँठने वाला तो कुर्सी की ऊँचाई पर रहता है—बृजबिहारी की क्या मजाल ?'

"क्या बक रहे हो तुम ?"

"यही कि अफसरी का नशा है—पद का मद ! समझे ? आसमानी का मशा तो बादशाह को भी न पहचान सके—जिसकी नजर के एक तेवर पर किसी का मरना और जीना है—और यह तो भाई उससे भी कहीं शेख ऊंची कुर्सी का नशा है, जो समझदारों को भी जामे से बाहर कर देता है। इतने तपस्यों के पाँव उखड़ गये महंती मिलते। जेल और त्याग की आग में तपे हुए कितने लीडर मिनिस्टरी की गद्दी को हवा लगते क्या से क्या हो गये ! और तो और वह कॉलेज का साथी मोहन—याद है न ? क्या था—पैसे-पैसे का मुहताज ! दोनों जून रोटी भी नसीब न थी ! और बस, पी० सी० एस० में आना था कि जैसे काया पलट गई। कल ही आंख से कीचें बह रही थी, और आज आँखों पर सोने का ऐहक चढ़ा है। वह शान-शौकत, वह कबाब-शराब—जैसे कहीं का नवाब है ! पुराने संगी साथियों का सलाम लेने को भी रवादार नहीं·····यह कोई ऐसा-

कैसा नशा है रमेश ?—ब्रांडी से भी सौगुना तेज ?"

"भाई, कुछ भी कहो, हमसे तो किसी की त्यौरी नहीं सही जाती। यह अफसरी की शान जब तक झाड़ नहीं पाता हूँ—"

"भला यह जान-बूझकर दलदल में पाँव रखना ! फँस गये तो !"

"बला से !" और उसने हाथ की गुप्ती इस फुर्ती से हवा में उछाली कि देखने वाले सन्न हो गये । यह तो कहिए कि उसी फुर्ती से हाथ ऊंचा कर उसे थाम भी लिया, नहीं तो एक नई बला सर आती

तभी दनदनाती हुई ट्रेन आ गई । हम दोनों तेजी से लपके ।

मगर भीड़ जैसी, वैसी ही ठेलमठेली—रेलपेल । फर्स्ट और सैकण्ड क्लास में तो मिलिटरी वर्दीवालों की भरमार थी । किस के कंधे पर दो सर थे उधर रूख करे । गोरे सिपाही और खाकी वर्दी—एक तो करैलो, दूसरी नीम चढ़ी !

इण्टर और थर्ड की कैफियत भी कुछ वैसी ही दर्दनाक थी ।

गाड़ी छूटने पर आई । गार्ड की सीटी चीख उठी । और, हम दोनों चक्कर काटते रह गये कि कहाँ जोर आजमाए' । नौकर तो न जाने कैसे एक थर्ड क्लास में घुस गया । खिड़कियों की राह घुसना तो हमारे लिए मानों जान दथेली पर रखना था ।

गाड़ी सरकने लगी । हम दोनों सामने सैकण्ड के डब्बे पर झपटे । दरवाजा तो खुला नहीं, पावदान पर हैंडल थामे खड़े हो गये । एक सिक्ख सज्जन दरवाजे पर अकड़े खड़े थे । हम तो खैर, कुछ वैसे खतरे में न थे, मगर रमेश की हालत कुछ संगीन थी । वह चीख उठा-'सरदार साहब ! जान गई, रहम कीजिये !'

'हमने भी कहा कि जगह तो काफ़ी है हम लोग खड़े रहेंगे, अन्दर आने दीजिए ।

रमेश के सर की टोपी उड़ गई । उसके पांव भी तिलमिला पड़े । हमें तो डर हुआ कि हाथ अब छूटा तब छूटा । शायद हाथ की गुप्ती ने

मुी पकड़ कमजोर कर दी थी।

आखिर सरदार साहब पसीजे। हम तो खैर, दरवाजे पर थे ही, रमेश भी अन्दर दाखिल हो गया। मगर वाह री फुर्ती! वह अन्दर कदम रखते ही दरवाजे से लगी बेंच पर धस-से बैठ गया। चार-पांच बङ्गाली सज्जन बैठे थे। लोग कसमस करते रहे तो क्या, रमेश अकड़-कर बैठ ही गया। हमने मुस्काकर कहा भी कि यह खूब! कहाँ खड़े होने भर की जगह न थी, कहां आप गाव-तकिये ढूँढने लगे!

रमेश ने हँस कर कहा—"अजी, यहां लिहाज और शर्म क्या?—'बढ़कर हाथ जो ले ले, यहां मीना उसी का है!'

दूसरा स्टेशन आ गया। गाड़ी खड़ी हो चली। झुककर देखा तो होश उड़ गये। उफ़! यह रेलपेल! इतने मुसाफिर कहां खपेंगे।

फिर लीजिए, वही तमाशा—वही रेला। मगर सरदार साहब से भी नम्बर मार ले गया रमेश। बैठे ही बैठे दरवाजे पर ऐसे कसकर पैर जमा दिये कि भाई, वाह! मजाल क्या कि कोई अन्दर कदम रख दे। मैदान उसी के हाथ रहा। जबान तो, खैर, चलती ही थी हाथ की गुप्ती भी नाचने लगी।

गाड़ी जब चली, तो एक जरा चरफर बूढ़ा आदमी न जाने कैसे भीड़ ठेलता हुआ हमारे डिब्बे की ओर झपटा और तमाम 'हैं-हैं' आवाज पर भी पावदान पर जम ही तो गया—"बाबू जी! लड़का अस्पताल में खाट से रहा है। हालत संगीन है। माई का प्रसाद लिये जा रहा हूँ।"

देखा, उसकी गर्दन की पोटली में फूल-त्ती और न जाने क्या-क्या है।

'उतरो उतरो, मर जाओगे।'—रमेश ने कड़क कर कहा।

"हमारे मरने की कौन फिकर है भाई?"

"अबे, उतरता है कि लगाऊं......"

"खबरदार! यह अपे तबे........"

रमेश की त्यौरी तन गई।

गाड़ी बढ़ रही है। बेचारा बूढ़ा पायदान पर तिलमिला रहा है। गर्दन की झोली से फूल-पत्ते उड़ चले।

हमसे देखा न गया। अब गिरे तब गिरे।

आने दो भाई! क्यों नाहक—"

मगर रमेश काहे को सुने! जैसे जिद सवार है!

"अबे, यह सैकंड है सैकंड—है पास सैकंड का टिकट? —

'आगे स्टेशन पर ले लेंगे।"

"तो हम यों न आने देंगे; उतरो!'

'वाह रे! जैसे कि गाड़ी तुम्हारे घर की है!"

बस, रमेश पर ताव आ गया। लगा दिया एक धक्का। हाथ हैंडल से छूट गये। बेचारा मुँह के बल गिरा। वह तो, भगवान् भला करे उस ओचेवाले का, जिसने लपक कर हाथ का सहारा दे दिया कहीं गाड़ी प्लेटफार्म से बाहर जा पड़ी होती, तो न जाने क्या हाल होता। फिर भी हमने लपक कर देखा, वह बुरी तरह चोट खा गया था। सिर खुल गया था। उसके तमाम प्रसाद और फूल-पत्ते प्लेटफार्म पर बिखर रहे थे।

डब्बे के मुसाफिर तो वैसे ही बैठे-के-बैठे रह गये। किसी के चेहरे पर कोई बल तक नहीं। हाँ, एक बंगाली बाबू जरा भौं तरेर कर बोले—'ए कि कोरलेन मोशाइ'। सरदार साहब भी कन्धे झाड़कर बोले—साहब, कोई आपको भी यों धक्के दे बैठता तो······"

हम भी उबल पड़े—"क्षमा करना, तुम तो बृजबिहारी से भी नम्बर ले गये! फुट-भर बैठने की जगह क्या मिली कि लाट हो गये भूल गये, पल-भर पहले अपना हाल क्या था— जरा सोचो भी तो, बृजबिहारी ने तो गर्दन फेर इसी कदर कहा था कि यहाँ दफ्तर में जगह नहीं है—यों उबलकर किसी की गर्दन में हाथ नहीं दे दिया उसने। अपनी आँख की फूली नहीं दीखती, चले हैं औरों की आँख की किंकरी देखने!"

रमेश की तो सिट्टी-पिट्टी गुम। नाम पर गुस्सा पाला- आज मुँह की खानी पड़ी।··· वाह रे नशा! आदमी यों पल में भूल बैठता है अपनी बीती!

और हमने रमेश के हाथ की गुप्ती एक झटके से खींचकर खिड़की से बाहर फेंक दी।

: १० :

किनारा

नित्य की भांति ही जब लाला बशेशरनाथ ने अखबार का चौथा पृष्ठ पलटा, जिस पर शरणार्थियों के सम्बन्ध में समाचार रहते थे, तो रेखांकित 'अपहृत महिलाओं की वापसी' के नीचे लिखे मोटे शीर्षक 'कल एक जत्था दिल्ली और पहुँच रहा है' ने उनकी दृष्टि को बरबस अपनी ओर खींच लिया। समाचार का पूरा विवरण समाप्त करते उन्हें मुश्किल से पांच सैकण्ड भी न लगे होंगे और पढ़ते ही वे विचार मग्न हो गए। अखबार की पंक्तियां धुंधली पड़ गईं, सारा पृष्ठ एक काली पुती हुई सलेट के सदृश आंखों के सामने ठहर गया और उसमें उन्होंने देखा सोहनदई को—मदन की मां को···।काली सलेट पर धीरे-धीरे श्वेत रेखाएं एक गति के साथ अंकित होती गईं, उभरीं और नेत्रों के सामने सोहनदई थी—उनसे केवल तीन वर्ष छोटी श्वेतकेशी सोहनदई, चेचक के दागों से जिसका काला पड़ा चेहरा तब भय के कारण और भी स्याह पड़ गया था। आंखें—मौत को साकार देख कर दया, जीवन और रक्षा के सबल आश्रय की याचना करने वाली आंखें, जिनके दोनों कोनों में पानी रुका रह गया था, जो सहायता के लिए बिलख रही थीं। ओठ, जो प्राणों को संकट में देख छटपटाते कपोत की तरह फड़क-फड़क कर रह जाते थे···चीत्कारों और हाहाकार की हृदय विदारक ध्वनि···और अंत में जो नर-पिशाचों के क्रूर अट्टहास की सुदृढ़ दीवार के बीच अपने को असहाय और आबद्ध देख कर मां धरा के वक्ष पर गिर पड़ी थी···। वही सोहनदई अखबार के पन्ने की काली सलेट पर सफेद रेखा बन कर मूर्त्त हो उठी थी। शरीर मानों जड़ हो गया बशेशरनाथ का।

अपहृत महिलाओं का एक जत्था कल राजधानी आ रहा है— अखबार की पंक्तियाँ चमक उठीं। बशेशरनाथ ने उस समाचार को फिर पढ़ा, एक बार और पढ़ा।

सोहनदई लौट कर नहीं आई। कितने जत्थे आ चुके, पर उसका कोई पता न लगा। बशेशरनाथ ने सारे शरणार्थी शिविरों के प्रबन्धों को पत्र लिखे, केन्द्रीय कार्यालय के शरणार्थी विभाग के सौ-सौ चक्कर लगाये, पर सोहनदई की कोई सूचना न मिली। तब बशेशरनाथ हृदय मसोस कर रह गए। अपहृत महिलाओं की वापसी का कार्य जब प्रारम्भ हुआ तो बशेशरनाथ ने उसकी आशा की जो उन्हें असम्भव जान पड़ता था। मन में विश्वास होता कि सोहनदई लौट आयेगी। उनका मन कहता था कि आततायियों ने उस के प्राण नहीं लिए।

"लेकिन धर्म-परिवर्तन ?" अंतर ने पूछा।

"नहीं ! नहीं !" विश्वास अडिग सिद्ध होता। सोहनदई का दृढ़ स्वर बशेशरनाथ के कानों में गूंज जाता—'चाहे तुम से बिछुड़ कर गुण्डों के पाले पड़ जाऊं, पर धर्म-कर्म नहीं छोड़ूंगी। गले में फंदा भी न लगा सकी तो किसी मरे का छुरा ही छीन कर अपनी छाती में भोंक लूँगी। एक हफ्ते में मकान बेच लो, तब तक कोई आपत्ति नहीं आयेगी जी, मेरे ठाकुर जी ने मुझे सुझा दिया है।'

लेकिन धार्मिक अंधविश्वास के आधार पर खड़ी सोहनदई की वह बुनियादें कितनी कच्ची निकलीं—विश्वासघातिनी ! ओह उसके ठाकुर जी ही उसे न बचा सके।

और मदन की बहू सावित्री ? बशेशरनाथ का रक्ताभाव के कारण पीला पड़ा शरीर एकदम जैसे ठंडा-सा पड़ गया। नवविवाहिता पुत्रवधू तीन मास भी सुख से न रह सकी। क्या विधाता को यही अन्तर्वेदना देकर भारतभूमि में मुझे भेजना था ? उसका जाने का क्या हाल हुआ होगा ? हाय, अपनी सास के कहने पर ही जीने की दुलत्ती में बंद रह गई।

बशेशरनाथ की आंखों के सामने मारपीट व लूट पाट का वह भयानक चित्र घूम गया। अग्नि की लाल-लाल धधकती ज्वालाएं जैसे बशेशरनाथ के चारों ओर लहरा उठीं, सब कुछ जलने लगा, मकान धराशायी होने लगे और इस सब के बीच भागते हुए हिंदुओं को छुरे व गोलियों की घातक मार से तड़पते, भूलुण्ठन होते देख, घसीट कर ले जाई जाती असहाय स्त्रियों और बच्चियों का हृदय-विदारक चीत्कार सुन भयविकम्पित बशेशरनाथ के मुंह से एक हलकी चीख निकल गई। कुर्सी से नीचे वह अर्ध चेतनावस्था में पड़े थे। अखबार कांपते हाथों से निकल कर दूर उड़ गया था तभी ऊपर के कमरे से दौड़ कर आ गया मदन।

"पिता जी' क्या हुआ आपको यह ?" वह चिंचित था। घबरा कर उसने अपनी पत्नी को पुकारा, "शान्ति ! शान्ति ! थोड़ा पानी तो लाओ।"

धूप के अघात से मुरझाया पौदा जैसे पानी छूते ही लहलहा उठता है, बशेशरनाथ ने भी मुंह पर जलबिंदु पड़ते ही करवट ली। कांटे पड़ी हुई जीभ ओठों पर एक बार फिर गई। गरदन को दायें हाथ का सहारा देकर पिता को उठाते हुए मदन ने अत्यंत दीन स्वर में कहा, "आपको समझा-समझा कर हार गया, आप अकेले न बैठा करें; पर आह हैं कि बैठक छोड़ते नहीं।"

बशेशरनाथ का कण्ठ जैसे इस ममत्व की वर्षा से कुछ गीला होता गया "पानी ला, बेटा !" मुंह से निकला और शांति के हाथ से गिलास लेकर मदन ने पिता को पानी पिलाया। थोड़ा जल गले से नीचे उतरा तो मुंह से बोल निकला, 'क्या करूं बेटा! तेरी मां की याद भुलाए नहीं भूलती ! कितने चाव से तेरा ब्याह किया था उसने, पर तीन मास भी सावित्री········।"

मदन के पास ही शांति को खड़ा देख बशेशरनाथ की वाणी रुक गई। सिर को जैसे एक बार फिर गहरा झटका लगा, नेत्र झपझपाए और

हाथ पानी के गिलास की ओर बढ़ गया। देखकर शांति वहाँ खड़ी न रह सकी; पैरों में मानों स्वयं ही गति आ गई। तेजी से रसोई में आ वह अन्यमनस्क अपने काम में लग गई।

शांति को वहां से हटते देख बशेशरनाथ की वाणी पुनः सजीव हो उठी। अवरुद्ध कण्ठ से एक क्षीण आवाज निकली, "कुछ पता लगा बेटा, तेरी मां का और··· ! लेकिन बहू के लौटने की अब क्या आशा ! उस बेचारी की तो गुण्डों ने मेरे सामने ही बोटी-बोटी नोच डाली थी···हाय···!"

उत्तर में मौन मदन का मस्तक कुछ और नीचे झुक गया और वह अपने पिता के मुख के परिवर्तित भाव को लक्ष्य न कर सका। उनके मुख पर अब वेदना के स्थान पर भय की छाप थी, जैसे वे कोई अपराध करते हुए पकड़े गए हों।

एक क्षण तक निःशब्द रहने के बाद मदन बोल, "चलिए, पिता जी, खाना तैयार है। फिर आप दुकान भी जायंगे न !"

"हां !" यंत्रवत बशेशरनाथ बोले, "तुम खाओ, मेरी रुचि कुछ है नहीं, बेटा !"

"थोड़ा चावल ही लोजिये। मैं यहीं ला दूं !" पर बशेशरनाथ वहां से न हिले।

मदन फिर रसोई में आया। और तब रोटी बेलते-बोलते शांनि ने प्रश्न किया—"तो अभी तक उन्हें माता जी की याद आती है ?"

एक हल्की मुसकान से मदन बोला, "जी हां, तीस साल के साथी थे।"

"और आप तीन मास के !" शान्ति ने मदन के पहले विवाद की लक्ष्य कर व्यंग्य किया। उसे बताया गया था कि सावित्री से विवाह हुए अभी तीन मास ही हुए थे कि नगर में भयंकर रक्तकाण्ड मच गया। जो स्त्रियां उड़ाई गईं, उनमें मोहन की मां सोहनदई और पहिली पत्नी सावित्री भी थी। सावित्री को गुण्डों ने वहीं मार डाला था··· इत्यादि।

शान्ति ने तो केवल परिहास के लिये व्यंग्य किया था, परन्तु मदन मर्माहत हो उठा। सावित्री से उसे कितना प्रेम था! निमिष भर में उसके सामने सावित्री का सुन्दर मुखड़ा और विवाहित जीवन के वे रंगीले तीन मास घूम गये। परन्तु वह अपनी इस नई पत्नी से अपने हृदय का यह घाव छिपाना चाहता था। शान्ति की ठोड़ी को ऊपर उठाकर मुस्कराने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"नहीं! अब तीस दिन के साथी!"

शान्ति से विवाह हुए अभी एक मास हुआ था। मदन और शांति के नेत्र परस्पर झूल उठे। और उसी हंसी के बाद शान्ति ने तनिक गम्भीर बनकर पूछा, "क्यों जी, अगर माता जी लौट आईं तो क्या पिता जी उन्हें रख लेंगे?"

"हां, हां, क्यों नहीं? जो कुछ उनके साथ हुआ उसमें उनका क्या दोष। लाखों-हजारों के साथ भी वही हुआ।"

"लेकिन··समाज?" प्रश्नसूचक दृष्टि मदन को देख रही थी।

"हुं, समाज! अरे, समाज तो मेरे तुम्हारे बनाए बना है। यह तो हिम्मत का खेल है, हिम्मत का!"

थाली परोसते हुए शान्ति बोली, "आप समझिए तो बात को। इसी थाली में किसी की झूठी रोटी परोस दूं आपको, तो क्या आप मुंह लगायेंगे?"

मदन निरुत्तर हो गया। शान्ति विजय से मुस्करा उठी। अपनी झेंप मिटाने के लिए मदन बोला, "अम्मा जी तो अब बुड्ढी-ठेढ़ी हुईं, उनका वहां क्या बिगड़ा होगा। लौट भी आईं तो कौन ऊंगली उठायेगा उन पर? तुम्हीं कहो, क्या उनके पैरों न पड़ोगी तुम?"

इस बार जैसे बाजी मदन के हाथ रही। उसने उत्तर की प्रतीक्षा में गर्व से अपना-नव-विवाहिता पत्नी की ओर देखा।

शान्ति अप्रतिभ नहीं होने वाली थी। संभल कर बोली, "खैर, वह समय यदि आया तो देखा जायगा। लेकिन यदि, मान लीजिये कि आपको पहली स्त्री भी जीवित हो, तो क्या उसके आने पर उसे भी

आप स्वीकार कर लेंगे ? वह तो बुड्ढी-ठेड़ी नहीं थीं······।"

पहली पत्नी का जिक्र आते ही गपन फिर मर्माहत हो उठा। आर्द्र कण्ठ से बोला, "शान्ति, उसकी बात न करो। उसकी तो तभी मृत्यु हो गई थी। परलोक से लौटकर भला कौन आया है !"

तभी नीचे बड़े दरवाजे पर खट्-खट्' आवाज हुई और साथ ही वशेशरनाथ का 'कौन था ?' भी सुन पड़ा। मदन बोला, "देखूं कौन आया इस वक्त !"

वह थाली छोड़ उठने लगा तो शान्ति ने रोका, "नीचे बैठक में पिता जी है तो, सुन लेंगे !"

पर मदन न माना। उठा तो शन्ति न हंसते हुए आटे से सने हाथों से हां उसका कुरता पकड़ लिया, बीच में खाना छोड़कर नहीं जाने दूंगी।"

"मानो, छोड़ो तो !' इस समय पता नहीं क्यो मदन को नवोढ़ा पत्नी की यह चुहलबाजी पसन्द न आई। वह कुरते का छोर छुड़ाकर भागा। जीना उतरते-उतरते उसने सुना वशेशरनाथ का कड़ा स्वर— "लौट आई तो जाए कुंए में! हमारी यह कुछ नहीं लगती! विरादरी में नाक कटायेंगे हम। जाइए-जाइए कांग्रेस में भरती करवाइये। सरकार को शरणार्थी बसाने के लिए कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है। अखबार नहीं पढ़ते आप···?"

जोर के धमाके के साथ द्वार बन्द हो गया। और उसका धमाका 'खट' से मदन के धड़कते हुए हृदय से आ टकराया। मद्रा पर एक क्षण में आश्चर्य भाव फैल गया। नेत्र जैसे हवा भरने से विस्फारित हो गए। हृदय उद्वेलित हो उठा। शान्त गहन कुंए की छाती भारी पत्थर की चोट से गानो विकम्पित हो उठी।

"कौन आ गया! कौन आ गया ?" चिल्लाता हुआ वह वशेषरनाथ के सामने आ खड़ा हुआ, "कौन आ गया गया पिता जी ?" स्वर में क्रमिक चढ़ाव आता गया। मदन के

हाथ पिता के बाहुओं को झकझोर रहे थे, "आप चुप क्यों हैं ? बोलिए पिताजी ! कौन आ गया ? क्या मां का पता लग गया ? वे लौट आई ? बोलिए न ? आपने मां को क्यों लौटा दिया ? अभी तो आप उनके लिए इतने व्याकुल हो रहे थे।"

क्रोध से तिलमिला उठे वशेशरनाथ, "पागल हो गया है ? क्या चिल्ला रहा है ? कोई नहीं लौटा ! वहां से कोई नहीं लौट सकता ! यहां कोई नहीं लौट सकता ! इस घर में कोई लौट कर नहीं आ सकता !" स्वर धीरे-धीरे नीचे गिरता गया—जितना उनका स्वर नीचे गिरा, उतना ही ऊंचा स्वर गूंज उठा मदन का।

"आप बात छुपा रहे हैं ! मैंने सब सुना है। किसको आप कांग्रेस में भरती करने को कह रहे थे ? बोलिए न !···कौन शरणार्थी बसाने में सहायता करेगा, बताइए न पिता जी ? किस के घर में आने से आप की नाक कटेगी ? बताइए···बताइए···!"

मदन जितना भाव-प्रवण बना, द्रवित हुआ, वशेशरनाथ उतने ही कठोर होते गए। आंखें मदन पर अंगार बरसाने लगीं, "कह दिया न, अपना काम कर, मगज न चाट ! कोई नहीं लौटा, नहीं लौटा !"

मदन का सिर घूम गया, बैठक घूम गई, सारा घर घूम गया, दुनिया घूमने लगी। बोझिल पैर जीने की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे।

जीने से नीचे आती शांति मदन की वह मर्माहत मुद्रा देख सहम गई। चिंता से बोली, "क्या हुआ ? क्यों चिल्लाते थे दोनों बाप बेटे ?"

लेकिन मदन को उसी प्रकार मौन जीना चढ़ते देख शांति और भी चिंता से घिर गई। मदन कुछ भी कैसे कहता, कैसे सुनता ? मन में तो गूंज रहा था—"कौन लौट आया है ? बोलिए न पिता जी !"

रसोई में वह पुनः थाली के आगे जड़वत् आ बैठा और यंत्रवत् भोजन के कौर गले से पेट में उतारने लगा। कुछ देर बाद धीमे स्वर में बोला, जैसे अपने आप से कह रहा हो, "जान पड़ता है, मां लौट

आई है, पर पिता जी बात छुपा गए···।"

"मुझे तो आश्चर्य हो रहा है। जिसके लिए अभी-अभी वे इतने व्याकुल हो रहे थे बेहोश हुए जा रहे थे, वही जब आई तो उसे घर में घुसने तक नहीं दिया!" शांति ने मदन के सामने एक पहेली-सी रख दी।

कुछ समय तक विचार-मग्न रहने के बाद मदन बोला, "हो सकता है कि समाज के भय से उन्होंने ऐसा किया, लेकिन···"

"मैं कहती न थी, जो विधर्मियों के पल्ले अपना सब कुछ गवां बैठी हैं, उन्हें घर में रख कर कौन अपना हिन्दू-धर्म नष्ट करेगा? मैं तो···"

"बस, यहां पंडिताई न छांटो", मदन के भीतर घुमड़ता हुआ खीझ व रोष का मिला-जुला तूफान एकाएक फूट पड़ा। "इस हिन्दू-धर्म को रखो अपने आंचल में बांध कर। जब अपनी दुखी निराश्रिता मां-बहिनों के उद्धार का प्रश्न आता है तब हम मिथ्या समाज के हौवे से डर जाते हैं। पिता जी की क्या मजाल कि मां को घर में न आने दें। मैं अभी शरणार्थी-विभाग जाकर उसका पता लगाता हूँ। देखूँ मां कैसे घर नहीं आती हैं!"

पूछ-ताछ के बाद जब मदन को पता लगा कि पश्चिमी पंजाब से लाई गई अपहृत महिलाएं म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल के विशाल भवन में ठहराई गई हैं, तो उसने स्कूल तक पहुँचने में एक क्षण भी नष्ट नहीं किया। तीव्र अधीरता के कारण मदन को तब अपने नम्बर की प्रतीक्षा में पन्द्रह मिनट भी बाहर खड़े रहना कष्टप्रद लगा। जलाभाव में जैसे मीन इधर-उधर भटकती फिरती है, उसी प्रकार वह द्वार के सामने चक्कर लगाता रहा। और जब भीतर से आकर एक संतरी ने खिड़की में पुकारा, "मदनलाल अग्रवाल!" तो स्कूल के सिंहद्वार पर खड़े दो संतरियों पर एक निगाह डाल, उल्लसित हो वह खिड़की से ही भीतर कूद गया—मछली ने जैसे जल-स्रोत ढूंढ लिया हो।

वह प्रबन्धक के कमरे में पहुँचा। उसने अपना और पिता का नाम, पश्चिमी पंजाब के अपने पहले जिले और नगर का नाम, निष्क्रमण की तिथि आदि सभी आवश्यक बातें बता दीं। पाकिस्तान से लाई गई स्त्रियों के नामों की सूची की पड़ताल करते हुए प्रबन्धक ने पूछा, "क्या नाम बताया आपने ?"

"सोहनदेई। वह मेरी मां है। आज सवेरे वह हमारे घर आई थी, परन्तु मेरे बाप ने उसे लौटा दिया। मुझे बाद में पता चला। अब मैं उसे अपने साथ ले जाऊंगा। बाप की मुझे कोई परवाह नहीं..." मदन एक सांस में ही सब कुछ कह गया।

प्रबन्धक ने उसे बीच में ही टोकते हुए कहा, "आपके इस साहस और कर्त्तव्यभावना की मैं प्रशंसा करता हूँ। इस संकट के समय अपनी निर्दोष मां-बहिनों का उद्धार करने के लिए हमें आप जैसे युवकों की ही आवश्यकता है। हां, तो क्या आपके घर की कोई और स्त्री भी पीछे रह गई थी ?"

मदन की उद्दीप्त मुद्रा कुछ कजला गई। वह बोला, "मेरी पहली स्त्री सावित्री भी पीछे रह गई थी, परन्तु उसकी तो मृत्यु हो चुकी है।"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"मेरे पिता ने मुझे बताया है। उस दिन मैं घर से बाहर था। पीछे मेरे पिता ने ही सारा काण्ड देखा था।"

"आपके पास कोई और प्रमाण तो नहीं ?"

"नहीं।"

"तो आपके पिता ने आप से झूठ कहा। आपकी पत्नी जीवित है और वही यहां कैम्प में......"

"क्या सावित्री ?" मदन का रंध्र-रंध्र जैसे हिल उठा।

"हां, सावित्री। उसी को आज आपके पिता ने घर में घुसने नहीं दिया।"

मदन को अब सारी बात समझ में आ गई। तभी इतना पूछने

पर भी पिता ने उसे आने वाले का नाम नहीं बताया था। पिता के प्रति उसके मन में जो विरोध की भावना थी, उसने अब घृणा का रूप धारण कर लिया।

लेकिन उस मातृ-प्रेम के कारण उसके अन्दर जो कर्त्तव्य-भावना जागी थी, वह अब इस नई परिस्थिति में जवाब देने लगी। उसे एका-एक शान्ति का वह झूठी रोटी वाला तर्क याद हो आया, जो आज उसने सवेरे खाना खिलाते समय प्रस्तुत किया था। नारी की शरीरगत पवित्रता का वह पुराना तर्क।

प्रबन्धक मदन के इस बदले हुए रुख को ताड़ गया। कुछ देर बाद बोला, "बहिन सावित्री जैसी सती देवियां घर-घर में हों। अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए वह दुमंजले मकान से कूद पड़ी थी और उसकी एक टांग टूट गई। यहां वह अपाहिज होकर पहुंची है। आज आपके साहस की परख है, मदन जी! आपके पिता जीवित हैं। उन्हें सहन न हो, तब भी, हम आशा करते हैं, आप सावित्री बहिन को अपनायेंगे; ठुकरा कर उनकी दीन-दुनियां नष्ट न करेंगे।"

नतमस्तक हो मदन बैठा सुन रहा था। उसके सामने अब शान्ति भी थी, और सावित्री भी, और थीं बशेशरनाथ की दहकती भट्टी-सी आंखें। प्रबन्धक कह रहा था, "और फिर सतीत्व की रक्षा का प्रश्न तो उठता ही नहीं, मदन बाबू! जो रक्षा कर सकीं, वे भी आज हमारे समाज के पीलिया-पीड़ित नेत्रों में कलंकिनी हैं, वेश्या हैं, कायर हैं। लेकिन आप जानते हैं भारत लौट कर इन्होंने 'परधर्मो भयावहः' की मर्यादा को बनाए रखा है···"

मदन कुछ समझ न सका कि क्या उत्तर दे। और तभी उसने बाहर से यह स्वर सुना—

"नहीं, नहीं। ईश्वर के लिए मुझे वहां न ले चलिए। भगवती, सोमां, कमला की तरह मैं यहीं रहूँगी। किसी कैम्प में जाकर दुखी

वहनों की सेवा-चाकरी कर लूंगी। उससे नहीं मिलाइये। मैं जानती हूँ, वे अपने आप ही की मानेंगे...”

“पगली कहां की!” स्वयंसेविका ने धैर्य बंधाया, “यदि ऐसी बात होती तो वे तुम से यहां मिलने न आते।”

और दूसरे ही क्षण बैसाखी के सहारे चलती हुई सावित्री ने कमरे में प्रवेश किया। पति को सम्मुख देख उसकी आंखों में बाढ़-सी आ गई। बैसाखी सम्भालते हुए चरणधूलि लेने को झुकी, पर सहम कर खड़ी रह गई। मदन अपने को न रोक सका। “मेरी सावित्री!” कह कर उसने पत्नी को वक्ष से लगा लिया। आंखें भर आईं।

परन्तु दूसरे ही क्षण पिता की रौद्र मुद्रा सामने आते ही मदन सूख-सा गया। सावित्री ने यह मुद्रा-परिवर्तन देखा और आंसुओं की गति आप ही धीमी पड़ गई।

“आप कुशल हैं?” फिर भी उसके मुंह से निकला और नेत्र बन्द हो गए एक क्षण के लिए, मानो भगवान् ने कोई चिर-इच्छित वरदान पूरा किया हो।

“हां, सावित्री!” मदन का स्वर निष्प्राण-सा था, “पिता जी ने तुम्हारे आने की बात मुझ से छुपाई, पर मैं उन्हें मनाने का प्रयत्न करूंगा···।”

सुन कर व्याध के तीर से आहत कपोती की तरह सावित्री तड़फड़ा उठी। अश्रु फिर बह चले। “वे नहीं चाहते, तो मैं नहीं चलूंगी। हे भगवान्···!”

बिंधा हुआ मर्म मानो चीत्कार कर उठा। द्वार की ओर मुड़ी सावित्री, चल दी। मदन ने उसे सान्त्वना देने में अपने को असमर्थ पाया। रोती हुई सावित्री द्वार से बाहर हो गई।

मदन मूर्तिवत् खड़ा रह गया—अपराधी-सा।

मदन जब घर लौटा तो देखा पिता जी शाम का अखबार पढ़ रहे हैं। एकाएक उसका क्रोध जाग उठा। उसने अखबार छीन लिया उनके

हाथों से। जो वाणी पिता के सामने सदैव संयत रही थी, आज पिता का छल, कपट, धोखा, ढोंग देख कर उसका संयम टूट गया। मदन दहाड़ा—"आपने मुझ से छल किया है, पिता जी! आपने क्यों नहीं बताया कि सावित्री लौट आई है···"

"तो क्या तुम वहां हो आए?" बशेशरनाथ की वाणी में प्रतिशोध था।

"हां, मैं सावित्री से मिल आया हूँ!" मदन ने विद्रोह किया, "मैं उसे यहां भी लाऊंगा···"

"यदि तुम मुझे छोड़ सकते हो, तो उस कलंकिनी को बेरोक-टोक ला कर अपयश कमाओ, कुल के नाम को बट्टा लगाओ।" बशेशरनाथ की वाणी में अतिरेक आता गया, "और इस बूढ़े पिता को जीते जी नरक में धकेल दो···।"

उपेक्षा में मदन हंसा और फिर दांत पीस कर बोला, "आपको याद है कि शांति के साथ मेरा दूसरा विवाह करके भी आपने कितना बड़ा छल किया है। उसकी जात-पांत आपको मालूम है? वह अपने पिता के साथ अकेली ही बच कर लौटी थी ऐसा आपने कहा था न! क्या उसे गुण्डों का स्पर्श नहीं हुआ? बोलिए? धन के लालच में आपने उसके पिता को 'जिन्दगी के भार' से मुक्त किया और मेरी जिन्दगी के साथ सौदा करके आपने धर्म की मर्यादा नष्ट की···?"

'मदन! बशेशरनाथ का स्वर और चढ़ा।

पर पुत्र कहे जा रहा था "आपने किस मुंह से कहा था कि सावित्री को मेरे सामने गुण्डों ने बोटी-बोटी नोच डाली थी? पिता बन कर पुत्र से छल करना ही क्या आपका धर्म है? खैर, आप तो अपने कर्त्तव्य पथ से हटे हैं, पर मैं नहीं हटूंगा। शान्ति का हाथ मैंने पकड़ा है, उसे मंझधार में नहीं डुबोऊंगा। लेकिन किनारे लगी सावित्री को भी मैं जिन्दगी भर तूफानों से लड़ने के लिए नहीं छोड़ सकूंगा। यहां लाऊंगा उसे। सावित्री इस घर में आयेगी···!"

"वह इस घर में नहीं आ सकती।" बशेशरनाथ ने पूरी दृढ़ता से कहा। "मैं कह चुका, मुझ से अलग होना है तो सौ कुत्तों की चचोड़ी हुई हड्डी को तू भी गले में अटका।"

सुनकर मदन की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। कानों में सन् सन् चिऊँटियां-सी रेंगने लगीं। पैरों ने शरीर का बोझ सम्भालने मे असामर्थ्य प्रकट की। उसने अनुभव किया कि उसका संकल्प शिथिल होता जा रहा है। वह आजीवन पितृ-भक्त रहा था, यह पहला अवसर था कि उसने पिता का विरोध करने की ठानी थी। 'कुत्तों की चचोड़ी हुई हड्डी' वाले वाक्य ने उसकी सारी दृढ़ता को छिन्न-भिन्न कर दिया। वह ऊपर कमरे में जाकर पलंग पर लेट गया। नवोढ़ा शान्ति पास थी। पिता-पुत्र की बातचीत वह सुन चुकी थी। पति को दुखी देख कर बोली, "यदि सावित्री बहन को लाकर अलग रहें तो?"

मदन ने आंखें ऊपर उठाईं। शान्ति को लगा जैसे उनमें चमक लौटी है।

"क्या तुम्हारी भी यही इच्छा है?" मदन ने उससे ऐसे प्रश्न किया जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो।

दूसरे दिन प्रातः जब मदन म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल को जाने के लिये घर से जाने लगा, तो देखा दरवाजे पर ताला पड़ा है। रोष से सारी शिराओं में रक्त का प्रवाह तेज हो गया। दांत आपस में किचकिचा उठे। उसने बैठक में पहुँच पिता से चाबी मांगी, "सावित्री को मैं वहां भिखारिन-बंदिनी बनकर नहीं रहने दूँगा! मुझे चाबी दे दीजिये!"

पर बशेशरनाथ का पत्थर-सा हृदय न हिला, न पिघला।

"जा आराम कर!" दृढ़ता व उपेक्षा से उन्होंने कहा, "धर्म और कुल की मर्यादा रख! पागल न बन!"

तभी बाहर से आवाज़ आई, "भला दिन में भी द्वार बन्द करके बैठने लगे! यहाँ भी क्या दंगे हो रहे हैं?"

स्वर परिचित-सा जान पड़ा। बशेशरनाथ के शरीर में जैसे बिजल

सी दौड़ गई। स्वर बदल गया, मुद्रा बदल गई, भाव पलटा खा गए। "जा तो बेटा, रसोई में ठाकुर जी की बगल वाले आले में चाबी रखी है। जल्दी ला तो ··।"

मदन हर्ष और विस्मय मिश्रित भाव से दौड़ कर चाबी लाया और द्वार खोलते-खोलते उसने सुना, 'किस मुसलमानी मोहल्ले में आकर मकान लिया है। ये स्पेशल पुलिस वाले भाई मेरे साथ न होते, तो जाने कहां-कहां टक्करें खानी पड़तीं।'

इस बार मदन को भी स्वर परिचित-सा जान पड़ा। द्वार खुलते ही सामने खड़ी मदन की मां सोहनदेई को देखा, तो प्रसन्नता के मारे बशेशरनाथ के मुंह से बोल न निकला। मदन चुप खड़ा था, पत्थर-सा। सोहनदई घर में आ गई, आंगन में पड़े पीढ़े पर बैठती-बैठती बोली, "नवाब साहब के बच्चे खिला-खिला कर किसी तरह दिन काटे। बेचारे ने मुझे कोई कष्ट न होने दिया। यदि कोई मुझे सताने की चेष्टा करता, तो उसको नवाब साहब वो डांट लगाते कि कुछ न पूछो।'

एक ही सांस में यह सब कह चुकी सोहनदई, तो बशेशरनाथ बोले, "अरी बहू, कहां है? पैरों पड़ आकर सासू जी के।" सोहनदई को सम्बोधित करते हुए वे बोले, "मदन का दूसरा ब्याह कर लिया है—हाल ही में।·· पर वह कुलटा भी आ गई है कल···कैम्प में है।"

"यहां आकर क्या आग लगायेगी! वहीं न रहती जिस के पल्ले पड़ी थी। ला बहू, तू तो मुझे गंगाजल पिला, फिर स्नान करूं और अपने ठाकुरजी को भोग धराऊँ।"

मदन अब तक मौन खड़ा यह नाटक देख रहा था। मां की ओर तिरस्कार भरी दृष्टि से देख कर वह बोला—"यहां आते तुम पर किसी ने अंगुली न उठाई? रास्ता छोड़ कर लोग दूर न हो गए?"

"मदन!" पैर पटककर बशेशरनाथ चिल्लाए। सोहनदई की आंखें फट गईं और मदन कहता रहा—"तुम्हारी काली छाया से कोई डरा नहीं? लो, तुम्हारे ठाकुर जी को मैं लाये देता हूँ, सेवा-पूजा करो।'

निमिष मात्रा में ही मदन रसोई में से ठाकुर जी की मूर्ति उठा लाया और मां के आगे रख कर बोला—"लो, करो सेवा! और मुझे उसकी सेवा करनी है, जिसे अब तुमने दीन का छोड़ा न दुनिया का! तुम पत्थरों की सेवा करो, मुझे मानव की सेवा प्यारी है!"

यह कह मदन तेजी से चल दिया। पीछे पांव की चाप सुन कर वह रुका, देखा शांति पीछे-पीछे चली आ रही है। उसने प्रश्न सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"बहिन को लिवाने के लिये मैं भी आप के साथ जाऊंगी," शांति ने कहा।

दूसरे दिन मदन ने एक अलग मकान किराये पर लिया और सावित्री व शांति के साथ उसमें रहने लगा।

डूबती हुई सावित्री को किनारा मिला और मदन व शांति को सेवा का अवसर।

: ११ :

फिल्मी कहानी

कम नहीं, एम० ए०। दो-तीन कहानी-संग्रह भी निकल चुके। प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में शान से नाम भी आता रहता। साल-दो-साल सम्पादकीय कुर्सी पर बैठ कलम भी घिसी और जो लिखा वह चमका भी। नई बात पैदा करने की आशा भी मुझ से की जाने लगी। पर यह न समझिये, इसी लिए मुझे 'राधा-फ़िल्म्स' में रख लिया गया, बल्कि इस लिए कि मेरे सगे चाचा सेठ दत्तामल के हेड मुनीम हैं। सट्टे का रुख सूँघने में चाचाजी बाजार भर को चुनौती देते हैं। सेठ दत्तामल की बाजारों में ही नहीं, तिजोरियों में भी चाचाजी की समझदारी की चमक है।

मुंशी 'कलेजा' साहब पहले से ही कम्पनी के कहानी, संवाद और गीत विभाग के मुखिया थे। उनकी कई पिक्चर निकल भी चुकी थीं। एक दो गीत 'हिट्' भी हो चुके थे और 'घघरिया झूमरी-सी बल खाय' को तो वह अभी तक फिल्मी-गोष्ठियों में गुनगुनाया करते थे। मुझे 'कलेजा' साहब का असिस्टेन्ट बना दिया गया। एक पिक्चर वह लिख रहे थे, उसी के सिलसिले में 'कलेजा' साहब मुझे फिल्म टेकनीक की ट्रेनिंग देने लगे। सेठ जी का इरादा था, बच्चे को आगे बढ़ाया जाय। ट्रेनिंग लेने और फिल्म को पूरी-पूरी लेखन टेकनीक सीखने के लिये दो-तीन महीने का समय भी मुझे दिया गया।

अगली पिक्चर मैं ही लिखूंगा, यह भी मुंशी जी ने मुझे बता दिया। मुंशी जी ने तीन महीने में अपनी पिक्चर लिख डाली। अब मुझे आज्ञा हुई कि दूसरी पिक्चर के लिए कहानी लिखूं। सिर में

तो चक्कर था ही, साथ ही देख आया "एमिलजोला'—फ्रेंच ग्रंथकार का प्रसिद्ध जीवन-चरित्र। मन में आया, ऐसी ही एक कहानी किसी हिन्दी-लेखक के जीवन को लेकर लिखनी चाहिए। जोश में आ उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द की जीवन-कहानी लिख डाली। कहानी सुनने और उस पर फिल्मी बहस करने के लिए सेठजी ने दिन भी तय कर दिया।

सब लोग सेठ जी के घर पर ही जमा हुए। चारों तरफ फिल्मी फरिश्तों का जमघट देखा, तो कलेजा धक्-धक् करने लगा। सेठ जी ने 'बेटा' कह कहानी सुनाने का संकेत किया। मैं नींबू चूसने का ध्यान करते हुए फाइल खोलने लगा, तो सहसा 'आइये-आइये' की फुलझड़ियां छूट पड़ीं। देखा, सेठानी जी लजाती-सकुचाती सी भीतर आने का अभ्यास सा कर रही हैं।

"अरे, आओ न!" सेठजीने वहीं बैठे २ कहा और मुंशी 'कलेजा' फुर्ती से उछल कर दरवाजे पर।

'आइये न माजी···वाह-खूब, मैं तो···।" 'कलेजा' साहब ने दसों उंगलियों से कमरे की तरफ संकेत किया।

सेठानी जी दांये हाथ की दो उंगलियों से ओढ़नी का किनारा एक गाल की तरफ ताने मुसका-सकुचा कर रह गई। उनकी लाजभरी झिझक देख सेठजी उठे और उन्हें अन्दर लाते हुए बोले, 'अरे, चलो न।"

"हमें तो शरम लगे है," सेठानी जी फिर लाजभरी गुदगुदी से फुदकती-सी बोली।

"वाह, मांजी, ये सबतो आपके बच्चे हैं!" 'कलेजा' साहब ने बताया।

"और यह तो अपना ही छोरा है—मुनीम जी का भतीजा···।" सेठजी कहते हुए उनकी कमर पर हाथ रख, उन्हें भीतर ले आये। वह लजाती-मुसकाती, पुतलियां नचाती भीतर आईं। कमरे में नमस्ते,

प्रणाम, हीं-हीं हं-हं-हं, मांजी आदि के ढेर लग गये। सेठानी अपनी अठारह वर्षों लड़की 'बेबी' के पास, रिजर्व सीट पर फस्स से बैठ गईं। सेठ जी ने फिर मेरी तरफ देखा और कहा, "हां, अब शुरू करो।"

मैं कहानी सुनाने के लिये मुंह पूरी तरह खोल भो न पाया कि डायरेक्टर घोष बोल उठे, "लेकिन कास्ट के बारे में भी कुछ तय किया ?"

'अशोक और लोला चिटनिस की टीम ठोक रहेगी,' प्रोडेक्शन-इंचार्ज ने राय दी।

"ये लोग बड़े भारी पड़ जाते हैं। हाई कास्ट रख कर पिक्चर की कौस्ट बढ़ाना···।" सेठ जी ने असहमति प्रकट की।

"माजी, आप की राय में कौन-कौन आर्टिस्ट लिया जाय ?" 'कलेजा' साहब ने सेठानी जी से पूछा।

"हमें तो घोरी-दीक्षित की जोड़ी अच्छी लगे है।" सेठानो जी ने भी अपनी अमूल्य सम्मति दे डाली।

"ना ना, अम्मा, स्वर्णलता को रखना हीरोइन। 'रतन' में कितना अच्छा गाती है—अंखियां मिला कै, जिया भरमा कै··हो··· हो···।' बेबी जी ने राग अलापना भी शुरू कर दिया, पर सेठानी जी ने आंखों से वरजा। आह, बेबी जी के अरमान दिल में ही घुट कर रह गये।

कहानी सुनी नहीं, कास्ट पर बहस। मैं बुद्ध-सा सब सुनता रहा—एकाकी-सा देखता रहा।

म्युजिक डाइरेक्टर मि० नाशाद ने भी मुंह खोला, राइटर साहब से भी तो पूछ लीजिए, किस किस आर्टिस्ट को ध्यान में रखकर स्टोरी लिखी है।"

"कहानी के लिये आर्टिस्ट तलाश किये जाते हैं या आर्टिस्टों के लिये कहानी लिखी जाती है ?" मैंने थकी वाणी में पूछा।

"हीरो-हीरोइन का ध्यान रख कर लिखा जाय तो तलाश करने में

तकलीफ नहीं होती।" 'कलेजा' साहब ने नयी टैकनीक बताई।

"अभी बच्चे हैं राइटर साहब, हँ-हँ-हँ-हँ !" प्रोडक्शन-इंचार्ज ने व्यंग्य किया।

"अभी इण्डस्ट्री में घुसे हुए दिन ही कितने हुए !" घोष बाबू ने भी कह कर दांत दिखाए।

"फिर भी कहानी तो पहले ठीक हो जाय" सेठ जी ने कह कर मेरी ओर देखा।

"यह कहानी हिन्दी के बहुत बड़े उपन्यासकार बाबू प्रेमचन्द के जीवन की है। 'एमिलजोला' पिक्चर तो आपने देखी ही होगी—वैसी ही यह···। भारत भर में प्रेमचन्द का बड़ा नाम है। उनकी बहुत-सी रचनाएं अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं में भी······" मैंने इतना कह सांस ली।

"हां, तो कहानी शुरू करो न," सेठ जी ने संकेत किया।

मैंने पढ़ना शुरू किया, "दूर तक जंगल ही जंगल—बियाबान सुन-सान। ऊंची-नीची पतली नागिन-सी टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी। झाड़ियां ही झाड़ियां। खेत ही खेत। बरसात का मौसम और हरियाली। अचानक भीषण तूफान आता है। आसमान से तेज झड़ी लग जाती है, मूसला-धार वर्षा होने लगती है। बिजली कड़कने लगती है, ओले पड़ने लगते है। चारों तरफ पानी ही पानी। इन डरावनी घड़ियों में, इस तूफानी समय, कलेजा कंपाने वाले काल में, बादलों की छाया में ओले और वर्षा के नीचे से गुजरता हुआ एक गरीब विद्यार्थी पैदल चल कर दूर बहुत दूर यानी ५-६ मील दूर से शहर में पढ़ने को आता है। कट टु—

"बनारस का एक हाई स्कूल। लड़के शोर मचा रहे हैं। वह विद्यार्थी भीगे कपड़ों में लिपटा कांपता हुआ स्कूल में पहुँचता है। आज फीस नहीं दे पाता। क्लास-टीचर उसे क्लास से बाहर निकाल देता है। उधर सर्दी से कड़कड़ी बंधी है और इधर यह व्यवहार ! और

यही है हमारा हीरो प्रेमचन्द" मैंने जरा सांस ली और सहमी नजर से सेठ जी की तरफ देखा।

"ओपनिंग तो बुरा नहीं," सेठ जी ने प्रोत्साहित किया।

"लौंग—शाट, शानदार चीज है!" कैमरामैन बोला।

"क्या मुंशी 'कलेजा' इतना भी न सिखा पाते। आखिर तीन महीने तक···।" 'कलेजा' साहब पान की पीक मुंह में ही संभालते हुए बोले।

"हां इसके बाद?" मि० घोष ने पूछा।

"इसके बाद हीरो का मुरझाया चेहरा उसकी मां के मुंह में 'डिजाल्व' होता है। और···" मैंने कहा और प्रोडक्शन-इंचार्ज कनखियों से जरा मुसकाया।

इसके बाद कट टु, डिजाल्व, फेड इन, फेड आउट, यह सीन और वह सीन करके पन्द्रह मिनट में ही मैंने कहानी पूरी पढ़ सुनाई। बोझ-सा उतार सब के मुखों पर आने वाले भावों अनुभावों को पढ़ने लगा।

"कैसी रही?" 'कलेजा' साहब ने सब की राय ली।

"क्या चलेगा यह शाला स्टोरी! न रोमांस, न शाला कोई विलेन! न कोई सस्पेंस, न इसमें कोई ग्रिप। बस गरीब हीरो पढ़ता है, नौकरी करता है, जोश में नौकरी छोड़ देता है। बहुत बड़ा राइटर बन जाता है—बहुत-सा नाब्हिल्स लिखता है। यह भी शाला कोई स्टोरी हुआं!" मि० घोष ने कहानी की आलोचना कर डाली।

"और क्लाइमेक्स का कहीं पता तक नहीं सारी स्टोरी पढ़ गये··· एण्ड नो स्ट्रगल एटाल," प्रोडक्शन-इंचार्ज ने कहा।

"ना-ना, यह तो एक ढांचा है। आप लोग अदल-बदल कर ठीक बना लें। पहली चीज है और लड़के को इण्डस्ट्री में आये दिन ही कितने हुए हैं, सेठ जी ने समझाया।

'और क्या, मेरे तो बाल पक गये इण्डस्ट्री में। लेकिन आप जानते हैं, शूटिंग शुरू होने से पहले सेठ जी क्या गजब की तब्दीलियां

कर देते हैं। हां, यह बात तो है ही, स्टोरी में रोमांस न आया तो "और साथ ही सस्पेन्स तो स्टोरी की जान है राइटर की काबलियत का पता तो बढ़िया क्लाइमैक्स से लगता है।" कलेजा साहब ने एक ही वार में सब को पछाड़ दिया।

'पहला तीन चार सीन तो बिल्कुल ठीक। हीरो जब कालेज में पढ़ता है तो किसी से उसका प्रेम जरूर होना चाहिए," मि० घोष ने सुझाया।

"प्रेम न किया तो हीरो किस काम का?" कैमरामैन बोल उठा।

"और उस लड़की यानी हीरोइन को एक लड़का पहले ही प्रेम करता है। यही बन जायगा विलेन!" मि० घोष ने तय कर दिया।

"खूब खूब! प्रेम करने का मौका और होगा ही कहां? और क्या बुड्ढा होकर मुहब्बत करेगा किसी छोकरी से?" प्रोडक्शन इन्चार्ज बोला।

"और अब नाम की भी खास वजह होगई। इसी प्रेम-काण्ड के कारण ही हीरो ने अपना नाम प्रेमचन्द रख लिया, वरना असल तो धनपतराय है।" 'कलेजा' साहब चमकती हुई पुतलियों से बोले उनकी चमत्कारी अक्ल पर चारों तरफ 'वाहब्वा-वाहब्वा' का शोर मच गया। सेठ जी भी प्रसन्न। सेठानी भी भ्रू अवगुंठन से मुसका दीं। 'बेबी' तो उछल पड़ी। मैं बावले की तरह हक्का-बक्का-सा देखता रह गया।

"यहाँ मनमाना रोमांस दिखा सकते हैं। जी भर मुहब्बत की चाशनी चला सकते हैं। पूनो की उजियाली चांदनी-सी रात। गंगा की नशीली रपटती लहरों में हीरो-हीरोइन बैठे जीवन के सपने बटोर रहे हैं। नौका विहार, प्लेग्राउण्ड में लुका-छिपी, चम्पा के कुञ्जों में आंख-मिचौली, एण्ड सो मनी थिंग्स। गीतों के लिए भी कितनी सिचुएशन्स निकल आईं!" मि० नाशाद ने शानदार सुझाव रख अपने काम की याद दिला दी।

"लेकिन प्रेमचन्द की लाइफ में ऐसा कुछ है नहीं। उन दिनों को-ऐजुकेशन भी नहीं थी।" मैंने अधमरे साहस से मुँह खोला।

"भैया,तुम्हें पिक्चर बनानी है या प्रेमचन्द की लाइफ देखनी। बण्डल-पिक्चर बना कर तीन लाख रुपया तो मिट्टी में नहीं डालना।" सेठ जी ने कहा।

"अभी जमाना क्या देखा। कालेज में मौजें कीं। बाप ने भेजा बेटे ने उड़ाया यहाँ तो सेठ जी की सेवा में बाल सफे.........।" "कलेजा' साहब ने दाँत कुरेदते हुए व्यंग्य किया।

"प्रेमचन्द गाना भी गायेंगे?"

'हाँ, कम-से-कम तीन गाने तो.........."प्रोडक्शन इंचार्ज बोले।

"तो बेचारे को नचाओगे भी?"

"तुम्हारे प्रेमचन्द क्या महाराज हरिचन्द से भी ज्यादा हो गए? अहा, काशी के बाजारों में कैसा दर्दीला गीत गाते हु जाते हैं। श्मशान तक गाते हैं। और भरत जी भगवान् राम की तलाश करते हुए कैसा रुआसा गीत...क्या गजब का मुखड़ा है—'बता दो राम गए किस ओर!' और सीता जी का वह गीत—मुझको भूल गए निर्मोही।' आ...।...।...। राम गए किस......किस...ओर।" मि० नाशाद ने बाकायदा गाना शुरू कर दिया।

"बिना गाने का सिनेमा क्या! गाने तो १०-१२ हों तो अच्छा।" सेठानी जी भी अब खुल कर सुझाव देनी लगीं।

"और क्या, मांजी! और उस पिक्चर में गीत का जो मुखड़ा आपने दिया था, वही गीत 'हिट' हुआ। मैं तो तभी से मांजी की राय का कायल हूँ।" मुन्शी 'कलेजा' ने मांजी को राय पर अपनी भी राय चिपका दी।

"अम्मा, 'रतन' की तरह गाने रखवाना। मुझे तो वह गीत बड़ा प्यारा लगता है—गाऊँ?...अखियां मिला के, जिया भरमा के, चले

नहीं जाना···हो···चले नहीं जाना।' बेबी ने इस बार तो मन की निकाल ही ली।

"वाह···वाह, मेन तो खूब गाती है ! इस घर में हर आदमी लोग कलाकार है।" मि० घोष ने बेबी की कमर पर प्यार से हाथ फेर उस के अरमानों को गुदगुदा दिया। और वह लचक-लचक गई।

बहुत देर के बाद सेठ जी ने मौन तोड़ा, 'खैर' तो इस तरह करो। विलेन का करेक्टर बढ़ाना पड़ेगा। हां, एक दिन विलेन हीरो को मारने का षड्यन्त्र रचता है। खीर की प्लेट में विष मिला कर हीरो को खिलाने की कोशिश करता है। हीरो खाने को लेता है। चम्मच भर मुंह में डालना चाहता है। आईएंस घड़कते दिल से देखती है। बाहर शोर होता है। वह ठहर जाता है। फिर चम्मच भर मुंह में डालना चाहता है। हीरोइन बार-बार प्यार से कहती है—'खाइये न। अच्छे, तुम्हें मेरी कसम !' फिर शोर होता है। अचानक बाहर आग लग जाती है। हीरो उठकर बाहर झपटता है। प्लेट जमीन पर गिर कर टूट जाती है। और उस खीर को कुत्ता खा लेता है···।"

सेठ जी बात पूरी भी न कह पाये कि चारों तरफ से 'वाहव्वा-वाहव्वा" खूब-खूब' का शोर मच गया। सेठ जी ने मुसकाते हुए आगे सुनने का संकेत किया। सब मौन। सेठ जी ने फिर कड़क कर कहना शुरू किया, "हाँ, एक और नई बात। वाह, यह तो सोचा तक न था।'

सब की आंखें सेठ जी के मुख पर और कान उनकी जिह्वा पर। सेठ जी फिर बोले, "हां कुत्ता मर जाता है। हीरो को पता चल जाता है, खीर में विष था। और विलेन धूर्तता की हंसी-हंसते हुए कहता है, यह है इसका प्यार ! तुम्हें किसी तरह राह से अलग करना चाहती है और तुम अब भी बुद्धू बने हो। सच है, आदमी मुहब्बत में अन्धा हो ही जाता है ! और मालूम है, वह तो प्रोफेसर नाग से·····।'

श्रोर इसी बात पर हीरो-हीरोइन में अनबन हो जाती है ।"

"आइडिया ! आइडिया !" कह मुंशी 'कलेजा' ने फुदक कर सेट जी का हाथ चूम लिया । सेठानी जी लाज के मारे ऐसे सिकुड़ कर रह गई, जैसे उनके साथ ही यह शुभ कार्य हुआ हो ।

"मारहव्लस ! मारहव्लस !" मि० घोष मारे जोश के उछल पड़े ।

"और यही कहानी का ग्रिप—नायाब सस्पेंस !" मि० नाशाद ने कहा ।

इसे कहते हैं रीयल प्रोड्यूसर ! यानो प्रोड्यूसर के यही माने अमरीका में हैं—एकजेक्टली यही ।' प्रोडक्शन-इंचार्ज ने अपने फिल्मी ज्ञान का परिचय दिया ।

"यह तो बिल्कुल उल्टी बात है । स्टोरी पूरी करें सेठ जी नाम हो हम भखुओं का ।" 'कलेजा, साहब ने फिर सम्मान भेंट किया ।

"और इण्डस्ट्री में ऐसे-ऐसे प्रोड्यूसर भी भरे पड़े हैं, रात-दिन खून पसीना एक करके लिखे बेचारे गरीब राइटर और नाम जावे प्रोड्यूसर का ।" कैमरा मैन बोला ।

मि० नाशाद बोले, "दूर क्यों जाते हो, उनको ही देखो सेठ पन······"

"हुश ! किसी का नाम लेने से क्या" मि० घोष ने बात काट दी ।

'कोई किसी से छिपा तो है नहीं लाइन में ।" 'कलेजा' जी बोले ।

"खैर, इन बातों में पड़ने से क्या । हमें अपना काम देखना है कि दूसरों के कजिये किस्से शुरू करने !"

सेठ जी बात कह भी न पाये 'कलेजा' ने हां में हां मिलाकर कहा

बिल्कुल-बिल्कुल। कोई कुंए में जाय, हमें क्या। क्यों मां जी ?"

मां जी ने केवल मुसकाकर उनकी बात पर सही की मुहर लगा दी। सेठ जी ने फिर बात शुरू की, 'खैर, हाँ, मेरे विचार में अब आप की स्टोरी पूरी हो गई। क्यों भई, है न ? अगर कोई कमी हो तो··· खैर, मुंशीजी, इस लड़के से मिल कर इसे सीन-बाइ-सीन लिख डालें। अगले सोमवार तक फाइनल कर लें।"

"और गीतों की सिचुएशन्स ?" मि० नाशाद भला अपने लिए निश्चय कराये बिना कैसे उठने दे सकते थे।

"अब रह क्या गया—साफ तो है। १२ गाने तो बहुत हो जायेंगे। ८-६ काफी है। क्यों मि० घोष जी ? सेठ ने अपने निश्चय पर राय मांगी।

"आठ-नौ गाना बम काफी है। एक डूवेट, दो हीरो का और दो हीरोइन का। एक साइड-हीरोइन का। एक या दो कोरस।" मि० घोष बोले।

"और क्या ? और सिचुएशन्स सारी की-सारी नेचुरल है। फीस न दे सकने पर क्लास से निकाले जाते वक्त वह दर्द भरा गाना गाते हुए निकलता है—'बरबाद हो गई मेरे अरमानों की दुनियां।' या 'तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।' अरे हाँ-हाँ, 'हमारे जख्म पे मरहम जरा लगा देना। हो··हो लगा देना।' और गंगा में नैया चलाते हुए भी एक डूवेट गाते हैं—'चन्दा से गोरा है मेरा सजनवा। रेशम से नाजुक है मेरी दुल्हनियाँ।" मुंशी 'कलेजा' ने सुझाया।

"क्या डान्स नहीं रखना ?" सेठानी जी ने नई याद दिलाई।

"क्यों नहीं। चार डांस तो जरूर होंगे।" नाशाद जी बोले।

"दो गाने डांस के साथ दिए जा सकते हैं। हीरोइन प्रेम में मस्त हो जाती है और नाचती है।" सेठ जी बोले।

"और वैसे गाने कहां रखोगे—'अंखियां मिला के, जिया भरमा के'···और 'सावन के बादलो, उन से ये जा कहो···?" बेबी ने पूछा।

"दोनों आ जायेंगे। बेबी जी के मन के गाने तो इस बार जरूर देने हैं। थर्ड ईयर की परीक्षा के बाद दो महीने की गर्मियों की छुट्टियों में हीरो घर जाने लगता है तो हीरोइन गाती है—'अंखियां लड़ा के... हो, परदेसी बालमा ...मां से अंखियां लड़ा के...!' और दूसरा गाना वहां आ जायगा, जब हीरो गलतफहमी में पड़ नाराज हो जाता है तो हीरोइन गाती है—सावन के बादलो...उन से ये जा कहो......।" 'कलेजा' साहब ने बेबी के मन की भी कर दी।

"अब आपकी कहानी शानदार बन गई। गाने भी सब आ गये। अब आप भी अपना तान-तंबूरा लेकर तैयारी कर दीजिए, नाशाद जी।" सेठ जी ने कहा।

"मैं तो आज से ही तैयार हूं।" नाशाद साहब बोले।

"अच्छा, मांजी, अब कैसी लगी स्टोरी ?" 'कलेजा' साहब ने अन्तिम फैसला सुनना चाहा।

"अब तो अच्छी लगै है हमैं भी।" सेठानी जी चमकती आंखों से बोली।

कहानी पास हो गई। अब कोई डर नहीं।

"तो अब फिर कब मिल रहे हैं ?" सेठ जी ने सब को चले जाने का संकेत किया। सब उठ खड़े हुए। सेठ जी, सेठानी जी, बेबी जी सब को अलग-अलग कई-कई बार 'साहब जी' कह कर सब कमरे से बाहर हो गए। मैं भी काठ के उल्लू की तरह बगल में फाइयल दबाए मुंशी 'कलेजा' के पीछे पीछे चला आया।

प्रेमचन्द जी महाराज, अब चढ़े हो इन अक्ल के दलालों, फिल्म वालों के हत्थे ! क्या-क्या नाच नचाते हैं, ईश्वर ही मालिक है।

———